गिजुभाई-ग्रन्थमाला-11
प्राथमिक शाला में
चिट्ठी-वाचन
गिजुभाई

गिजुभाई-ग्रंथमाला—११

प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन

लेखक

गिजुभाई

अनुवाद

काशिनाथ त्रिवेदी

मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति,

राजलदेसर (चूरू) ३३१८०२

दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर
भावनगर–364 002 (गुजरात)

प्रकाशक :
मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति,
राजलदेसर

आर्थिक सहयोग :
स्व. सोहनलाल नोरत्नमल बैद की स्मृति में,
श्रीमती हंसादेवी बैद,
राजलदेसर

प्रकाशन-वर्ष : 1990
प्रतियां : 1100
मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स,
सुगन निवास, बीकानेर

प्रकाशकीय

हमारे साथियों ने जब यहाँ पर सन् 1954 में अभिनव बालभारती नामक संस्था स्थापित की थी, तभी मेरे जेहन में बाल-शिक्षण के साथ ही साथ अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का विचार भी उठ रहा था, बल्कि अभिभावकों द्वारा प्रशिक्षण लेने का विचार भी मेरे मन में बहुत प्रबल था। मैं सौभाग्य-शाली रहा कि एक बार कलकत्ते में मुझे प्रख्यात बाल-शिक्षाविद् स्व. के. यू. भामरा से प्रशिक्षण लेने का अवसर मिला, सन् 1958-59 में।

उस प्रशिक्षण ने मेरे इस चिंतन की दिशा को और भी पुष्ट कर दिया कि बाल-शिक्षण के लिए अध्यापकों का ही नहीं, माता-पिताओं का भी नजरिया बदलना ज़रूरी है। मेरे आग्रह पर स्व. के. यू. भामरा यहाँ पधारे और सन् 1962 में उन्होंने मोण्टीसोरी प्रशिक्षण का काम शुरू किया। आज 25 वर्षों से अध्यापकों के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्यक्रम यहाँ जारी है और अब तक लगभग 200 अध्यापक प्रशिक्षण का लाभ हासिल कर चुके हैं।

मैं अब भी बराबर अनुभव करता रहा हूँ कि अध्यापक बनने के लिए मोण्टीसोरी-शिक्षण का प्रशिक्षण लेना एक बात है, और बच्चों के माता-पिता बनने के लिए प्रशिक्षण लेना एक अलग अहमियत रखता है। मेरी पत्नी और दोनों पुत्रियों ने महज इसी इरादे से प्रशिक्षण लिया था। मै चाहता हूँ कि अभिभावकों को इस दिशा में प्रेरित किया जाना जरूरी है। इसी इरादे से एक बार हमने संस्था में 'अभिभावकत्व-शिक्षण' पर एक संगोष्ठी भी आयोजित की थी। संगोष्ठी में बाल-शिक्षण के अछूते पक्षों पर तो रोशनी डाली ही गई, संस्था के लिए एक सुझाव भी सामने आया कि माता-पिता की शिक्षा के लिए शैक्षिक-साहित्य प्रकाशित कराया जाए। हमने इसे

स्वीकार किया, और पहला कदम यह उठाना जरूरी समझा कि देश के महान बाल-शिक्षाविद् स्व. गिजुभाई बधेका की गुजराती भाषा में लिखी हुई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाकर पुस्तकाकार प्रकाशित करें। इस दिशा में इंदौर के महान गाँधीवादी चिंतक और पूर्व मध्यभारत के प्रथम शिक्षामन्त्री श्री काशिनाथ त्रिवेदी का हमें अभूतपूर्व सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला। स्व. गिजुभाई की अनेक पुस्तकों का वे सन् 1932-34 के कार्यकाल में ही अनुवाद कर चुके हैं, और शेष का भी अनुवाद करने का उनका संकल्प है। इसी दिशा में मुझे 'शिविरा-पत्रिका' के संपादकीय सहकर्मी श्री रामनरेश सोनी का भी सहयोग मिला है।

पुस्तक-प्रकाशन का काम अपने आप में बहुत कठिन होता है, विशेषतया अर्थ के अभाव में तो असम्भव-प्राय हो जाता है। पर हमारा सौभाग्य है कि मेरे अनुरोध को यशस्वी दानदाताओं ने स्वीकार किया, और प्रत्येक पुस्तक को अकेले अपने ही आर्थिक-सहयोग से छापने का भार वहन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक **प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन** के प्रथम संस्करण का व्यय भार राजलदेसर की हमारी हितैषी तथा बाल-शिक्षा में गहन रुचि रखने वाली श्रीमती हंसादेवी बैद ने सहर्ष वहन किया है, और शिक्षकों-अभिभावकों की शिक्षा की बड़ी ही रोचक तथा उपयोगी पुस्तक के प्रकाशन की माध्यम बनी हैं। इस योगदान के लिए संस्था की ओर से उनका कोटिशः आभार।

इस पुस्तक की 'भूमिका' के लिए गिजुभाई के अध्यापन मंदिर की स्नातिका और बाल-शिक्षण की विशेषज्ञा श्रीमती मधुरी बेन देसाई का और सम्पादकीय निवेदन के लिए श्रद्धेय काशिनाथ त्रिवेदी का मैं हार्दिक आभार मानता हूँ।

पिछले दिनों राजस्थान सरकार ने 'दिवास्वप्न' और 'बाल-शिक्षण : जैसा मैं समझ पाया' की पांच-पांच हजार प्रतियां ऑपरेशन-ब्लैकबोर्ड के अंतर्गत खरीदकर अपने विद्यालयों को भेजी। मुझे खुशी है कि शिक्षा विभाग ने हमारे प्रकाशन कार्य की उपयोगिता को समझा।

मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति
राजलदेसर

—कुन्दन बैद

संपादक का निवेदन

हिन्दी में गिजुभाई-ग्रंथमाला का अवतरण

अपने जन्म से पहले अपनी माँ के गर्भ में, और जन्म के बाद अपने माता-पिता और परिवार के बीच, हमारे निर्दोष और निरीह बच्चों को हमारी ही अपनी नादानी, नासमझी और कमजोरियों के कारण शरीर और मन से जुड़े जो अनगिनत दुःख निरन्तर भोगने पड़ते हैं, जो उपेक्षा, जो अपमान, जो तिरस्कार, जो मार-पीट और डाँट-फटकार उनको बराबर सहनी पड़ती है, यदि कोई माई का लाल इन सब पर एक लम्बी दर्द-भरी कहानी लिखे, तो निश्चय ही वह कहानी, हम में से जो भी संवेदनशील हैं, और सहृदय हैं, उनको रुलाये बिना रहेगी ही नहीं। अपने ही बालकों को हमने ही तन-मन के जितने दुःख दिए हैं, चलते-फिरते और उठते-बैठते हमने उनको जितना मारा-पीटा, रुलाया, सताया और दुरदुराया है, उसकी तो कोई सीमा रही ही नहीं है। इन सबकी तुलना में हमारे घरों में बालकों के सही प्यार-दुलार का पलड़ा प्रायः हल्का ही रहता रहा है।

ऐसे अनगिनत दुःखी-दरदी बालकों के बीच उनके मसीहा बनकर काम करने वाले स्वर्गीय गिजुभाई बधेका की अमृत वर्षा करने वाली लेखनी से लिखी गई, और माता-पिताओं और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए वरदान-रूप बनी हुई छोटी-बड़ी गुजराती पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद इस गिजुभाई-ग्रंथमाला के नाम से प्रकाशित करने का सुयोग और सौभाग्य बाल-शिक्षा के काम में लगी हमारी एक छोटी-सी शिक्षा-संस्था को मिला है, इसकी बहुत ही गहरी प्रसन्नता और धन्यता हमारे मनःप्राण में रम रही है। हमको लगता है कि इससे अधिक पवित्र और पावन काम हमारे हिस्से न पहले कभी आया, और न आगे कभी आ पाएगा। हम अपनी इस कृतार्थता को किन शब्दों में और कैसे व्यक्त करें, इसको हम समझ नहीं पा रहे हैं। हम नम्रतापूर्वक मानते हैं

कि परम मंगलमय प्रभु की परम सुख देने वाली आन्तरिक प्रेरणा का ही यह एक मधुर और सुखद फल है। इसको लोकात्मा रूपी और घट-घट-व्यापी प्रभु के चरणों में सादर, सविनय समर्पित करके हम धन्य हो लेना चाहते हैं : **त्वदीय वस्तु गोविन्दः तुभ्यमेव समर्पयेत् !**

क्राउन सोलह पेजी आकार के कोई तीन हजार की पृष्ठ संख्या वाली इस गिजुभाई-ग्रंथमाला में गिजुभाई की जिन 15 पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनी है, उनमें चार पुस्तकें माता-पिताओं के लिए हैं। चारों अपने ढंग की अनोखी और मार्गदर्शक पुस्तकें हैं। घरों में बालकों के जीवन को स्वस्थ, सुखी और समृद्ध बनाने की प्रेरक और मार्मिक चर्चा इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। ये हैं :

1. माता-पिता से
2. माँ-बाप बनना कठिन है
3. माता-पिता के प्रश्न, और
4. माँ-बापों की माथापच्ची।

बाकी ग्यारह पुस्तकों में बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के विविध अंगों की विशद चर्चा की गई है। इनके नाम यों हैं :

1. मोण्टीसोरी-पद्धति
2. बाल-शिक्षण : जैसा मैं समझ पाया
3. प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियां
4. प्राथमिक शाला में शिक्षक
5. प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा
6. प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन
7. प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा, भाग 1-2
8. दिवास्वप्न
9. शिक्षक हों तो
10. चलते-फिरते
11. कथा-कहानी शास्त्र, भाग 1-2

इनमें 'मोण्टीसोरी पद्धति', 'दिवास्वप्न' और 'कथा-कहानी का शास्त्र' ये तीन पुस्तकें अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा-जगत् के लिए गिजुभाई की अपनी अनमोल और अमर देन बनी हैं। इनमें बाल-देवता के पुजारी और बाल-शिक्षक गिजुभाई ने बहुत ही गहराई में जाकर अपनी आत्मा को उंडेला है। बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के मर्म को समझने में ये अपने पाठकों की बहुत मदद करती हैं। बार-बार पढ़ने, पीने, पचाने और अपनाने लायक भरपूर सामग्री इनमें भरी पड़ी है। ये अपने पाठकों को बाल-जीवन की गहराइयों में ले जाती हैं, और बाल-जीवन के मर्म को समझने में पग-पग पर उनकी सहायता करती हैं।

गिजुभाई की इन पन्द्रह रचनाओं में से केवल दो रचनाएं, 'दिवास्वप्न' और 'प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा' सन् 1934 में पहली बार हिन्दी में प्रकाशित हुई थीं। शेष सब रचनाएँ अब सन् 1987 में क्रम-क्रम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने लगी हैं। पचास से भी अधिक वर्षों तक हिन्दी-भाषी जनता का हमारा शिक्षा-जगत् इन पुस्तकों के प्रकाशन से वंचित बना रहा। न गिजुभाई का जन्म-शताब्दी-वर्ष आता, और न यह पावन अनुष्ठान हमारे संयुक्त पुरुषार्थ का एक निमित्त बनता। 15 नवम्बर, 1984 को शुरू हुआ गिजुभाई का जन्म-शताब्दी वर्ष 15 नवम्बर, 1985 को पूरा हो गया। किन्तु गुजरात की बाल-शिक्षा-संस्थाओं ने और बाल-शिक्षा-प्रेमी भाई-बहनों ने गुजरात की सरकार के साथ जुड़कर जन्म-शताब्दी-वर्ष की अवधि 15 नवम्बर, 86 तक बढ़ाई और गिजुभाई के जीवन और कार्य को उसके विविध रूपों में जानने और समझने की एक नई लहर गुजरात-भर में उठ खड़ी हुई। गुजरात के पड़ौसी के नाते उस लहर ने राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के हम कुछ साथियों को भी प्रेरित और प्रभावित किया। फलस्वरूप गिजुभाई-ग्रंथमाला को हिन्दी में प्रकाशित करने का शुभ संकल्प राजस्थान के राजलदेसर नगर के बाल-शिक्षा-प्रेमी नागरिक भाई श्री कुन्दन बैद के मन में जागा, और उन्होंने इस ग्रंथमाला को हिन्दी-भाषी जगत् के हाथों में सौंपने का बीड़ा उठा लिया।

हमको विश्वास है कि भारत का हिन्दी-भाषी जगत्, विशेषकर उसका हिन्दी-भाषी शिक्षा-जगत्, अपने बीच इस गिजुभाई-ग्रंथमाला का भरपूर

स्वागत, मुक्त और प्रसन्न मन से करेगा, और इससे प्रेरणा लेकर अपने क्षेत्र के बाल-जीवन और बाल-शिक्षण को सब प्रकार से समृद्ध बनाने के पुण्य-पावन कार्य में अपने तन-मन-धन की तल्लीनता के साथ जुट जाना पसन्द करेगा। हिन्दी में गिजुभाई-ग्रन्थमाला के अवतरण की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ?

अपने जीवन-काल में गिजुभाई ने अपनी रचनाओं को अपनी कमाई का साधन बनाने की बात सोची ही नहीं। अपने चिन्तन और लेखन का यह नैवेद्य भक्तिभावपूर्वक जनता जनार्दन को समर्पित करके उन्होंने जिस धन्यता का वरण किया, वह उनकी जीवन-साधना के अनुरूप ही रहा। गिजुभाई के इन पदचिह्नों का अनुसरण करके हमने भी अपनी गिजुभाई-ग्रंथमाला को व्यावसायिकता के स्पर्श से मुक्त रखा है, और ग्रंथमाला की सब पुस्तकों को उनके लागत मूल्य में ही पाठकों तक पहुँचाने का शुभ निश्चय किया है।

बीकानेर, राजस्थान के हमारे बाल-शिक्षा-प्रेमी साथी, जाने-माने शिक्षाविद् और गिजुभाई के परम प्रशंसक श्री रामनरेश सोनी इस ग्रन्थमाला के अनुष्ठान को सफल बनाने में हमारे साथ सक्रिय रूप से जुड़ गए हैं, इससे हमारा भार बहुत हल्का हो गया है।

हमको खुशी है कि हमारे साथी श्री कुन्दन बैद इस ग्रंथमाला की 15 पुस्तकों के लिए पन्द्रह ऐसे उदार और सहृदय दाताओं की खोज में लगे हैं, जो इनमें से एक-एक पुस्तक के प्रकाशन का सारा खर्च स्वयं उठा लेने को तैयार हों। इसमें भी पहल श्री कुन्दन बैद ने ही की है। त्याग और तप की बेल तो ऐसे ही खाद-पानी से फूलती-फलती रही है !

—काशिनाथ त्रिवेदी

गांव—पीपल्याराव,
इन्दौर—452001

भूमिका

बाल केन्द्रित शिक्षण की एक सार्थक दिशा

गिजुभाई ने बाल-शिक्षा का एक आन्दोलन पैदा किया था। शिक्षा का अर्थ उनके लिए बहुत व्यापक था और उन्होंने उसे सम्पूर्णता के साथ समझाने का प्रयत्न किया था। शिक्षा याने विकास, निर्माण, रचना, व्यवस्था, साधना, संस्कार। कितनी सारी अर्थ-छटायें हैं। व्यक्ति हो अथवा वस्तु, गढ़ना तो हरेक को पड़ता है। रोटी बनाने के लिए आटे को भी सानना और गूंदना पड़ता है, ऐसे ही व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को बनाने के लिए भी उसे संस्कारित करना पड़ता है। तभी व्यक्तित्त्व सुंदर, तेजस्वी, प्रखर व योग्य बन पाता है। सही शिक्षा से ही सर्वांगीण एवं संतुलित विकास संभव होता है और फिर बाल्यकाल का समय अत्यंत महत्त्व का है। उसे विकसित करने के लिए तो गिजुभाई जैसी दृष्टि एवं प्रयासों की ही जरूरत पड़ती है।

बालक के विकास का प्रथम चरण उसके जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक का गिना जाता है और द्वितीय चरण दो से छह वर्ष तक। दो वर्ष का बालक शारीरिक व मानसिक रीति से सीखने के लिए तैयार होता है। यह समय कितना नाजुक और महत्त्व का होता है, इसके बाबत गिजुभाई ने दो स्थितियां हमारे समझने के लिए सामने रखी हैं। एक स्थिति है बालक के जीवन-निर्माण की आधार-भित्ति रचने की, और दूसरी है आधार-भित्ति के ऊपर स्तंभों की रचना करने की। दोनों पक्षों के संबंध में गिजुभाई ने अपनी पुस्तकों में तो लिखा ही है, दक्षिणामूर्ति बाल-मंदिर में उन्होंने वर्षों तक उसे साक्षात् चरितार्थ करके दिखाया भी था।

बालक के विकास को नजदीकी से और सूक्ष्मता से देखने के लिए तथा अपने द्वारा निर्धारित शैक्षिक मूल्यों को सिद्ध करने के लिए भावनगर

(सौराष्ट्र) में गिजुभाई ने प्रयोगशाला के रूप में 'दक्षिणामूर्ति बाल-मंदिर' की शुरुआत की थी। बालकों की जरूरतों, बालकों की रुचियों, बालकों की शक्ति को ध्यान में रख कर उन्होंने अनेक प्रयोग किये थे और सार-रूप में उन्हें 'नूतन-शिक्षण' के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया था। नयी दृष्टि, नयी चेतना, नयी जागृति के प्रतीक गिजुभाई को आपके सामने लाते हुए मैं सुख और गौरव का अनुभव कर रही हूं।

हम देखते हैं कि घरों में माता को बालक के साथ ज्यादा समय बिताना पड़ता है इसलिए वही उसके ज्यादा नजदीक होती है। बालक को समझने की शक्ति और सहनशीलता भी मां में ही अधिक होती हैं। स्व. गिजुभाई ने भी मां जैसी सूक्ष्म दृष्टि और ममता भरी नजरों से बालकों को देखा था और उनके व्यक्तित्व को सजगतापूर्वक विकसित करने का प्रयत्न किया था। सघन मूंछों वाला प्रभावशाली स्वरूप होते हुए भी गिजुभाई बालकों के समीप आ सके और उनका विश्वास पा सके, तभी तो वे 'मूंछों वाली मां' बन सके।

गिजुभाई को देखने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था, पर वे जहां रहते थे, उस घर और उन्होंने जिस बाल मंदिर व अध्यापन-मंदिर की स्थापना की थी, उस वातावरण में एक वर्ष तक रहने का सौभाग्य मुझे अवश्य मिला था। आज से चालीस वर्ष पूर्व एक छात्राध्यापिका के रूप में सन् 1950 में मुझे दक्षिणामूर्ति अध्यापन-मंदिर में प्रशिक्षण के लिए प्रवेश मिला था। उस समय उनके पुत्र नरेन्द्र भाई बधेका और पुत्रवधू विमुबेन बधेका ने स्व. ताराबेन मोडक के नेतृत्व में दक्षिणामूर्ति बाल-अध्यापन मंदिर को फिर से संजीवित किया था। छात्राध्यापिका के रूप में मैंने 'दक्षिणामूर्ति' से जो कुछ प्राप्त किया था, आज वह मेरी खरी कमाई है, जिसके बल पर मैंने बाल-शिक्षण का काम मनोयोग से किया है और आज भी उसी में संलग्न हूं।

राजलदेसर से प्रकाशित गिजुभाई की दस महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद मैंने पढ़े हैं। ये प्रकाशन देश की बाल-शिक्षा के लिए तो दिशा-बोधक हैं ही, शिक्षा-सिद्धांत और शिक्षण-विधि को समझने के लिए भी इनकी महती आवश्यकता है। इतने वर्षों के बाद भी ये पुस्तकें इसीलिए आज उपयोगी और प्रासंगिक बनी हुई हैं क्योंकि ये एक प्रयोगनिष्ठ शिक्षक के अनुभव की भट्टी से निकले हुए खरे विचार हैं, जो उस समय की राष्ट्रीय और मानवीय मांग के परिप्रेक्ष्य में उद्‌भूत हुए थे।

आज जब गिजुभाई ग्रंथमाला की ग्यारहवीं पुस्तक 'प्राथमिक शाला में चिट्ठी वाचन' मेरे सामने आई है, तो चालीस वर्ष का अंतराल लांघकर एक बार फिर से मैं दक्षिणामूर्ति के प्रांगण में जा पहुंची हूं। दक्षिणामूर्ति तख्तेश्वर बाल मंदिर सच्चे अर्थ में बालकों का मंदिर था, जहां बालकों की पसंद की वस्तुएं वहां मौजूद थीं। दूसरे अर्थ में वह बालकों का घर ही था, जहां उनके लिए समुचित वातावरण निर्मित था। तीसरे अर्थ में वह एक प्रयोगशाला थी, जहां बालकों के विकास के अनुरूप सम्पूर्ण साधन-सामग्री मौजूद थी, ताकि बालक अपने आप प्रयोग करें और अनुभव प्राप्त करें।

अगर आपने देखा हो, तो तख्तेश्वर बाल मंदिर का एक छोटी टेकड़ी पर बना भवन बड़ा ही सुंदर है–खेलने, सीखने, पढ़ने का एक आदर्श स्थान भी और घर भी। टेकड़ी के नीचे गिजुभाई अपने परिवार के साथ रहते थे। टेकड़ी पर बड़ी कटहरी वाले भव्य शाला भवन में बाल-शिक्षण में काम आने लाने उपकरण यथास्थान सजाये हुए थे। कक्षा-कक्षों में बड़े ही सोच-समझ के बाद तरह-तरह के विभाग बनाये गए थे—व्यवहार जीवन शिक्षण विभाग, ज्ञानेन्द्रिय शिक्षण विभाग, भाषा-विकास विभाग, गणित विभाग, कला-कौशल विभाग, विज्ञान-विभाग आदि। अगर बालक रसोई का काम करना चाहे तो 'जीवन-व्यवहार विभाग' में उसके लिए लकड़ी की छोटी-छोटी परातें मौजूद थीं; आटा छानने की बालक की इच्छा होती तो छोटी-छोटी छलनियां भी थीं। इसी तरह 'ज्ञानेन्द्रिय विभाग' में आंख, नाक, स्पर्श, स्वाद आदि का सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण करने हेतु पर्याप्त उपकरण वहां मौजूद थे। मोंटेसरी के साधनों का भी वहां प्रयोग होता था।

कदाचित आपको पता होगा कि बाल मंदिर में आने के साथ ही बालकों

के साथ काम करने की समय-सारणी वहां क्या रहती थी ! इससे गिजुभाई की कार्य-प्रणाली और उनके साहित्य के भीतर पैंठने में हमें मदद मिलेगी।

सबसे पहले बालक प्रार्थना-कक्ष अथवा कहें कि संगीत-कक्ष में पूरे शाला-परिवार के साथ एकत्रित होते थे। बालक और शिक्षक सब अपनी-अपनी जगह आकर बैठ जाते थे। वाद्य यंत्रों में हारमोनियम, ढोलक, तबले, मंजीरे, घुंघुरू आदि का समावेश था।

सवेरे ही सवेरे बाल-मंदिर की टेकड़ी पर चढ़ते बच्चे बड़े खुश और स्वस्थ नजर आते, अपनी चपलें या बूट उतार कर वे यथास्थान रखते और संगीत-कक्ष में आ बैठते। वहां उन्हें संगीत का सुरीला व स्वस्थ वातावरण मिलता। बेशक, इसका उनके अगले कामों पर प्रभाव पड़ता था। वे समूह में गाते और बड़ों के साथ एकरूप हो जाते। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता था।

लगभग 30-40 मिनट तक बालकों की रुचि पर आधारित कार्यक्रम चलता और तब बच्चे दूसरे कक्ष में जाकर अपनी पसंद के उपकरणों (साधनों) पर काम करने जा बैठते। वे अपने आप अपना आसन बिछा लेते, खेलने लगते, आसन समेट कर रखते—तभी दूसरा उपकरण उठाते। इन छोटे-छोटे कार्यों में उनकी जागरूकता देखते ही बनती। शिक्षक उनका अवलोकन करते और मार्गदर्शन देते। बच्चे स्वेच्छा से उपकरणों का चयन कर सकें, स्वतंत्रता पूर्वक उन्हें खेलते रहें और ज्ञान व अनुभव हासिल करें, इसी पर उनका विशेष बल रहता था। वे बच्चों को गोलाकार सामने बिठा कर प्रत्येक साधन को उपयोग में लाने का प्रदर्शन कर दिखाते। बेशक बच्चों पर इसका बड़ा प्रभाव रहता।

इस प्रवृत्ति के बाद बालक नाश्ता करते। नाश्ते की व्यवस्था में हर किसी की बारी आती। वे प्लेटें साफ करने में आनंद का अनुभव करते, फिर खुले आंगण में घूमते, खेलते, झूलते, और अंत में 30 मिनट कला-कौशल-कक्ष में जाकर समूह में काम करते। इस तरह बालकों को सर्वांग विकास का वातावरण मिलता था।

बच्चे बारीकी से अवलोकन करते, एकाग्रता से काम करते, विनम्रता और आत्मविश्वास से अपने को व्यक्त करते, कल्पनाशील एवं जिज्ञासु बनते। वहां के स्वावलंबन-युक्त वातावरण में बालकों को केन्द्र में रखकर ही कार्य-सारणी की योजना चलाई जाती थी। बच्चे मुक्त भाव से विचरते थे और सुंदर व स्वस्थ वातावरण में काम करके खुशी-खुशी घर के लिए रवाना होते थे।

वहां के शैक्षिक वातावरण में नित नवीन प्रवृत्तियां होती थीं, पर अनेक प्रवृत्तियां स्थायी भी थी। भाषा-शिक्षण की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति थी— 'चिट्ठी वाचन', जिसका उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है।

भाषायी विकास के साधन वहां स्वयं बनाये हुए थे और क्रम से सजाये हुए थे।

'प्राथमिक शाला में चिट्ठी वाचन' पुस्तक का भाषा-शिक्षण में हम आज भी उपयोग कर सकते हैं, क्योंकि इसमें चित्र वाचन, शब्द वाचन, वाक्य वाचन, क्रियात्मक वाक्यों का वाचन आदि पर अत्यंत स्पष्टता से प्रकाश डाला गया है। यह पद्धति अपने में काफी हद तक वैज्ञानिक है।

इसकी विशेषता यह है कि बालक अकेला भी पढ़ सकता है, दो साथी या पूरा समूह भी इसे पढ़ सकता है और क्रिया करके शब्दों को अमल में ला सकता है। यह एक सरस पद्धति है। बालकों की रुचि पढ़ने से लेकर क्रिया करने तक सतत बनी रहती है। भाषा-शिक्षण में क्रिया-पद्धति को बहुधा काम में नहीं लाया जाता। इस पुस्तक द्वारा बच्चे छोटी-छोटी पर्चियों को चित्रों के साथ मिलाकर अक्षरों से शब्द बनाना भी सीखते हैं और क्रियात्मक वाचन को क्रिया में ढालते हैं, जैसे पानी लाओ, प्याला धोकर रख दो। पशु, पक्षी, फूल, सब्जी, चीजों आदि के चित्रों का वर्गीकरण करके शब्दों के साथ उन्हें पहचानने की क्रिया भी इसमें समाहित है।

इस पुस्तक के आधार पर शिक्षक और बालक दोनों अपनी ओर से काफी नया काम कर सकते हैं। वे अपनी रुचि के शब्द और वाक्य लिख कर नयी पुस्तिकाएं बना सकते हैं ताकि उनकी अपनी रुचि बनी रह सके। हम जानते हैं कि बालक क्रमशः नयी क्रियाएं सीखता है। पहले बालक ध्यान देकर अवलोकन

करना सीखता है, फिर पहचानना सीखता है और तब अनुकरण करना सीखता है। शुरू में बच्चा रोकर, हंसकर, इशारे से या हावभाव से अपने को व्यक्त करता है। उसके विकास का यह प्रथम चरण होता है। द्वितीय चरण में बालक भले ही बोल न सके, पर समझना सीख जाता है। 'कान बताओ, आंख बताओ, मां कहां है, नमस्ते करो, आंख बंद करो' आदि क्रियाओं का वह अर्थ समझता है और ऐसा करके अपना सहयोग प्रदान करता है। उसे इन क्रियाओं में प्रसन्नता का अनुभव होता है कि वह करना जानता है। या तो अपनी खुशी को वह चेहरे से व्यक्त करता है या ताली बजाता है। तृतीय चरण पर बालक सुन-समझ कर बोलने का प्रयास करता है। धीरे-धीरे शब्द बढ़ते जाते हैं और वह विविध शब्दों का उपयोग करते लगता है। यह क्रमबद्ध विकास है, जब तक कि बालक दो वर्ष का नहीं हो जाता।

इसके बाद की अवधि 'चिट्ठी वाचन' की होती है। वस्तुओं द्वारा, चित्रों द्वारा शब्दों को बढ़ाया जाता है, जिन्हें बालक पहचानने का अभ्यास करते हैं।

पुस्तक में पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक भाषा-शिक्षण को समाहित किया गया है। विविध प्रकार के साधन-सामग्री को उपयोग में लेने का इसमें उल्लेख किया गया है। गिजुभाई ने पुस्तक में दो बातों पर विशेष ध्यान देने का आग्रह किया है––एक वस्तु, दूसरी रचना। वस्तु को लेकर बालक के समक्ष क्या रखें कि वह उसे ग्रहण कर सके, यह विचारणीय मुद्दा है, ताकि बालक सरलता, सहजता व रुचिपूर्वक सीख सके। दूसरी आवश्यकता रचना की है। बालक बिना समझे रचना को रट ले, यह सही विधि नहीं है। रचना को बालक के सामने इस तरह प्रस्तुत किया जाए कि वह आसानी से समझ सके और उसमें आनंद ले सके। वस्तु और रचना सही न हो तो ये बालक में रुचि नहीं जगा सकेंगी और बालक इन्हें नीरसता से छोड़ देगा।

पुस्तक के द्वितीय खंड में साधन तैयार करने की विधि बताई गई है। पृष्ठ 58 पर लिखा है कि वाचन का प्राण तो अर्थ की समझ है, अक्षरों का महत्त्व गौण है। इसी तरह पृष्ठ 39 व 40 में वातावरण तैयार करने और ऐसे साधन बनाने पर बल दिया गया है जिनसे बालक तृप्ति का अनुभव सकें और उनमें पुनरावर्त्तन की वृत्ति जागे। कुल मिलाकर इस पुस्तक का महत्त्व मुझे आज भी इसलिए अधिक उपादेय लग रहा है कि शिक्षक के लिए जहां यह चुनौतीपूर्ण है वहीं बालक के लिए प्रति कदम विकासोन्मुखी।

यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि राष्ट्रीय विकास में हम अपने उन स्थायी मूल्यों को छोड़ते चले जा रहे हैं, जो यहां की आवश्यकताओं को समझते हुए गांधीजी ने हमारे सामने रखे थे। हम व्यक्तिनिष्ठ अधिक हो रहे हैं, परिणामस्वरूप संकुचितता और स्वार्थ बढ़ गए। समूह भावना आहत हो गई, अतः सहयोग-सहकार, उत्पादनशीलता और सृजनशीलता में अवरोध आ गया है। मूल्यों के ह्रास को लेकर हम गांधीजी को आज फिर से याद भी कर रहे हैं, कि उनके मूलभूत सिद्धांतों को छोड़कर आगे बढ़ पाना बहुत मुश्किल है। इसी तरह शिक्षण क्षेत्र में मूलभूत सिद्धांतों को दरकिनार करके भी आगे बढ़ पाना मुश्किल लग रहा है––विशेष रूप से बाल-शिक्षण के सिद्धांतों को लेकर।

गिजुभाई ने अपने समय में बाल-शिक्षण के जो सिद्धांत बनाये थे और जो प्रायोगिक कार्य किये थे, उनकी हमें आज भी आवश्यकता है, क्योंकि नयी शिक्षा नीति में उन्हीं पर बल देने का आग्रह किया गया है। बालकों को शिक्षण के केन्द्र में रख कर शिक्षा देने की बात तो इधर शायद ही कहीं देखने में आती है। अगर इस सिद्धांत को प्रत्येक कक्षा में आजमाने की तरफ ध्यान नहीं दिया जाएगा तो शिक्षा से वांछित लक्ष्य हासिल नहीं किये जा सकेंगे, न ही हम बालक का सम्मान कर सकेंगे।

हिन्दी के विशाल शिक्षा जगत को गिजुभाई की दस पुस्तकों का सैट भेंट देने के पश्चात् इस ग्यारहवीं पुस्तक को समर्पित करते मुझे बहुत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसका हिन्दी अनुवाद बहुत सरल, सरस व अर्थगर्भित हुआ है। हिन्दी भाषा शिक्षण की यों तो और भी अनेक पुस्तकें मिल जाएंगी, पर 'चिट्ठी वाचन' का विचार सर्वथा नया है और बच्चों की अभिरुचि को निरंतर बनाये रखता है, इस नाते इस पुस्तक का सम्मान किया जाना चाहिए।

इस पुस्तक के सर्जक, अनुवादक और प्रकाशक––तीनों को मेरा प्रणाम।

––मधुरी देसाई

–11 डी, पाकेट ए, एस. एफ. एस. फ्लैट्स,
सुखदेव विहार, नई दिल्ली-110065

विकास के क्रम में ऋतु का आगमन स्वाभाविक है। बीजांकुर की अपनी एक ऋतु होती है। पेड़ के बढ़ कर बड़े होने तक उसकी अनेकानेक ऋतुएं आ चुकती हैं। फूल की एक ऋतु है। फल की दूसरी ऋतु है। बुढ़ापे के बाद मर जाने की भी अपनी एक ऋतु आती ही है।

विकास चाहे वनस्पतियों का हो, पशुओं का हो या मनुष्यों का हो, सब प्रकार के विकास पर यह नियम लागू होता ही है। इसको हम विकास में काल-तत्त्व के नाम से पहचान सकते हैं।

अपने जन्म के बाद से चलना सीखने की स्थिति तक पहले बालक पालने में पड़ा-पड़ा हाथ-पैर चलाता है, फिर घुटनों के बल चलना शुरू करता है, आगे इसी क्रम में वह खड़ा होने लगता है, डगमग-डगमग चलने लगता है। ये विविध क्रियाएं बालक के शारीरिक विकास की अलग-अलग ऋतुएं होती हैं।

कान से सुन-सुन कर बोलना शुरू करने तक ध्वनि-उच्चारण से लेकर स्वर और व्यंजन बोलते-बोलते शब्दोच्चार से आगे बढ़ कर वाक्य बोलने की स्थिति तक पहुंचते हुए भाषा के विकास की अनेकानेक शिशिर और वसन्त ऋतुएँ आ चुकती हैं।

जैसे, पतझड़ के आने पर पत्ते लगातार झड़ते ही रहते हैं, और जब बसन्त ऋतु आती है, तो जैसे नई-नई कोंपलों की बहार-सी आ जाती है, जिस तरह फूलों की ऋतु में चारों तरफ फूल-ही-फूल खिल उठते हैं, और बरसात के दिनों में जिस तरह दीमकों की

बाँबियाँ खुल जाती हैं, उसी तरह जब मनुष्य के शरीर या मन के विकास की कोई एक ऋतु आती है, तब शरीर और मन की वही एक मुख्य हलचल बन जाती है। इस विकास-काल का आनन्द इतना अधिक होता है कि इसके चलते मनुष्य खाना-पीना और सोना तक भूल जाता है। इसके आनन्द को लगातार लूटते रहने के लिए मनुष्य विकास की इस क्रिया को बार-बार करता रहता है। दूसरों को इस में मजा आए या न आए, दूसरे उसकी तरफ देखें या न देखें, फिर भी वह खुद तो उसमें तल्लीन ही बना रहता है। चाहे चलना सीखने की बात हो, या बोलना सीखने की बात हो, किसी गूढ़ विषय को समझने की बात हो, या चाहे जैसी सादी या कठिन किस्म की बात हो या शरीर अथवा मन के विकास से जुड़ी बात हो, विकास करने वाले को तो वह एक-सा ही आनन्द देती है, वह उसको समान रूप से एकाग्र बनाए रखती है, और जहाँ वह खड़ा होता है, वहाँ से उसको बराबर आगे बढ़ाने वाली बनी रहती है। जब एक बार विकास का समय आ जाता है, तो क्रिया शुरू हो ही जाती है। शरीर के थकने पर यह क्रिया मन की मदद से चलने लगती है। जाग्रत मन के थकने पर यह नींद की स्थिति में अन्तर्मन में अथवा अजाग्रत मन में चलती रहती है।

इस प्रकार विकास के क्रम में नई-नई ऋतुएँ आती रहती हैं। एक-एक ऋतु विकास को एक-एक क़दम आगे ले जाती है। इस तरह हर क़दम जीवन का अपना एक-एक उत्सव बन जाता है। यह उत्सव एक दिन का भी हो सकता है, और आवश्यक हुआ, तो कई-कई दिनों और कई-कई महीनों का भी हो सकता है।

मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए उसके जन्म के समय से ही ऋतुओं का यह आगमन आवश्यक हो जाता है। एक के बाद एक विकास के नए-नए समय आते रहते हैं, और बालक आगे

बढ़ता रहता है। चाहे शरीर का विकास हो, चाहे बुद्धि का विकास हो, या मन का विकास हो, काल का यह तत्त्व सर्वत्र एक-सा ही होता है।

विकास का समय आने पर यदि बालक को विकास का पोषण करने वाली परिस्थिति मिलती है, तो बालक का विकास होने लगता है, यदि नहीं मिलती, तो बालक या तो मुरझाने लगता है, या उसका विकास रुक जाता है। यदि विकासक परिस्थिति के बदले बालक को विपरीत, विकृत और अस्वस्थ परिस्थितियाँ मिलती हैं, तो विकास की दृष्टि से वह पीछे हटने लगता है। बालक बीमार रहने लगता है, अथवा वह मौत के मुँह में जाना शुरू कर देता है।

बड़ी उमर तक पहुँच कर एक सम्पूर्ण मनुष्य बनने तक बालक के शरीर और मन में विकास को न जाने कितनी ऋतुएँ आ चुकती हैं।

: 2 :

यह नियम भाषा के विकास पर भी घटित होता है। भाषा के विकास के मार्ग पर जाने वाले बालक के रास्ते में भी अनेकानेक ऋतुएँ आती हैं। उनमें एक ऋतु है, शब्द-वाचन की। बालक बोलना सीख चुका है। अक्षर सीख चुका है। वह शब्द भी बनाने लगा है। वह शब्दों के अर्थ समझने लगा है। इस तरह उसके वाचन के मार्ग में तीन ऋतुएँ आ चुकी हैं। अब शब्द-वाचन की चौथी ऋतु शुरू हुई है।

ऋतुओं का आना शुरू हुआ कि काम बना। एक फूल खिला, दूसरा खिला, तीसरा खिला, यों खिलते-खिलते पूरा बगीचा खिल उठा। चारों ओर फूलों का एक गलीचा-सा बिछ गया। जब पत-

झड़ शुरू होती है, तो शुरू में एक पत्ता झड़ता है, दो पत्ते झड़ते हैं, तीन पत्ते झड़ते हैं, और फिर सारे पत्ते झड़ जाते हैं। रात का होना भी एक ऋतु ही है। एक तारा उगता है, दो उगते हैं, तीन उगते हैं, और यों होते-होते सारा आसमान तारों से भर जाता है।

एक बार बाल-मन्दिर में काम कर रहे एक बालक के जीवन में तिकोन और चौकोन की ऋतु आई। उन दिनों उसने अपने आस-पास की दुनिया में सब कहीं तिकोन और चौकोन ही देखे। वह जिधर भी देखता, उसकी आँखों के सामने तिकोन या चौकोन ही खड़े हो जाते। बादलों में भूमिति की आकृतियाँ बनतीं; तो उसकी आँखें उन पर गड़ जातीं। धूप-छाँह में भूमिति की आकृतियाँ बनतीं, तो वे उससे छिपी न रहतीं। जालियों की परछाई में, चाँद की छिटकी हुई चाँदनी में और गारे-मिट्टी की बनी उखड़ी हुई दीवारों में भी उसको तिकोन और चौकोन दिखाई पड़ते। आँख की इन्द्रिय के विकास का समय आया। बालक को अपना विकास करने की अनुकूलता मिल गई। बालक की दुनिया तरह-तरह के रूपों से भर गई। उसका पूरा जीवन रूपमय बन गया!

इसी तरह एक बार रंग की ऋतु आई। बाल-मन्दिर में रंग की तख्तियों का उपयोग करते-करते बालक की रंग-सम्बन्धी शक्ति खिल उठी। उसने जहाँ भी देखा, वहाँ उसको रंगों की विशेषता दिखाई देने लगी। आकाश के रंगों की अनन्त विविधता के आनन्द का अनुभव उसने किया। तितलियों के मन-मोहक रंगों की सुन्दरता को उसने अपनी आँखों से निहारा। हरे-भरे खेतों, नए-नए रंगों वाले फूलों, नाना प्रकार के रंगों वाले पशुओं और पक्षियों, और मनुष्यों द्वारा बनाई गई रंग-बिरंगी आकृतियों की रंगीन सुन्दरता का आनन्द उसने लूटा।

इसी तरह कर्णेन्द्रियों के विकास के चलते ध्वनियों की जो ऋतु

आई, उसने उसको नए-नए और मीठे-मीठ सुर सुनाए। ऐसा करते-करते बालक शब्द की ऋतु तक पहुँचा।

बालक ने एक शब्द पढ़ा, दूसरा शब्द पढ़ा, तीसरा पढ़ा। बस गाड़ी चल पड़ी। शब्द, शब्द और शब्द! वह जहाँ-तहाँ शब्द को ही खोजने लगा। जहाँ भी नज़र घूमती, वहाँ उसको शब्द ही दिखाई पड़ते। किसी भी विषय की पुस्तक क्यों न हो, कहानी की हो, विज्ञान की हो, इतिहास की हो या धर्म की हो, उसको तो वह समूची पुस्तक शब्दों की लगती। बाज़ार की दूकानों पर टँगी और लगी तख्तियों में भी उसको शब्द ही दीखते। जहाँ भी तख्ती नज़र आती, वह वहीं खड़ा हो जाता और शब्द पढ़ने लगता। जिन्होंने बँगला भाषा के या अंग्रेजी भाषा के शब्द पढ़ना सीख लिया है, उनकी आँखों के सामने तख्तियों पर लिखे शब्दों में और अख-बारों में छपे शब्दों में बँगाली के या अंग्रेजी के शब्द तैरते लगते हैं। जिनको इस बात का अनुभव है, वे मेरी बात को तुरन्त समझ सकेंगे। बालक अपने पढ़े हुए शब्दों को अपनी आँखों के सामने लाएगा, वह उनको मन-ही-मन गुनगुनाएगा, और किसी को कह कर सुनाएगा। पहले बालक को शब्द दीखते नहीं थे। मतलब यह कि वह उनको देखता तो था, लेकिन उनकी तरफ उसका ध्यान गया ही नहीं था। लेकिन अब बालक अपने चारों तरफ शब्द ही देखता है।

वह हर बार शब्द, शब्द और शब्द की ही माँग करता है। ठीक इसी समय शिक्षक को चाहिए कि वह बालक के लिए शब्द पढ़ने की अनुकूलता कर दे। शिक्षक इस समय को ज़रूर ही साध ले।

इसके लिए शब्द पोथियों की योजना उपयोगी सिद्ध हुई है। जब बाल-मन्दिरों में शब्द पढ़ने का मौसम आता है, तब वहाँ का

दृश्य देखने योग्य बन जाता है। बालक शब्द-पोथियों के पन्नों को झटझट उलटने लगते हैं, और वे शब्दों को बार-बार पढ़ने लगते हैं। एक ही शब्द-पोथी को कई-कई बार पढ़ चुकने पर भी उनका मन तृप्त होता नहीं है। बाल-मन्दिरों में तो बालकों को शब्द-पोथियों का एक व्यवस्थित साधन मिल जाता है। लेकिन इस मौसम में तो बालक क्या घर में, और क्या बाहर, सब कहीं, शब्दों को पढ़ने में ही रमा रहता है।

:3:

शब्द-वाचन के इस समय की समुचित व्यवस्था करने के लिए शब्द-पथियों की रचना करना आवश्यक है। इसमें मुख्य रूप से दो बातों का विचार करना होगा। एक, वस्तु का, और दूसरी, रचना का।

वाचन का आरम्भ शब्द-पोथी से होता है। बड़ी उमर वाला मनुष्य तत्त्व-ज्ञान की कोई बड़ी पुस्तक पढ़े, और कोई नन्हा बालक एकाध शब्द-पोथी पढ़े, तो तत्त्व की दृष्टि से ये दोनों बातें समान हैं। अपनी-अपनी भूमिका में स्थिर रहकर दोनों जो कुछ भी पढ़ते हैं, सो ज्ञान प्राप्ति के लिए पढ़ते हैं। पढ़कर दोनों स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं। दोनों पर पढ़ी हुई वस्तु का भला या बुरा प्रभाव पड़ता है। वस्तु में उसके प्रकार का अन्तर और गुण में उसके अंश का अन्तर स्वाभाविक है। फिर भी हर पढ़ने वाले के लिए उसका वाचन एक 'वाचन' है, और वह समान महत्त्व का है।

इसलिए शब्द-पोथी के समान वाचन-सामग्री में वस्तु आदि का भी ठीक-ठीक विचार किया जाना चाहिए, फिर भले ही बड़ों की दृष्टि से वह वाचन बिलकुल मामूली ही लगे।

शब्द-पोथी का वाचन, वाचन की विशाल दुनिया का प्रवेश-द्वार होता है। एक बार प्रवेश भली भांति हो जाए, प्रसन्नता-

पूर्वक हो जाए, अविरोध-भाव से हो जाए, पहले ही परिचय में प्रीति का अनुभव हो जाए, तो बालक के मन में वाचन के क्षेत्र में आगे बढ़ने का उत्साह प्रगट होगा, और आगे चलकर बालक वाचन का भरपूर लाभ उठा सकेगा।

यह तो स्वाभाविक ही है कि बड़ों को अपनी बड़ी दुनिया से जुड़ा हुआ वाचन चाहिए, और छोटों को उनकी छोटी दुनिया से जुड़ा हुआ वाचन मिलना चाहिए। फिर भी ज़रूरी यह है कि दोनों का वाचन स्वस्थ हो, वह दोनों की सहज भूख को तृप्त करने वाला हो, न तो उत्तेजक ही, और न नीरस ही हो। यह वाचन बुद्धि को रगड़ कर चमकाने वाला, क्रिया-शक्ति को व्यायाम देने वाला, कल्पना को वास्तविकता की उड़ान का आनन्द देने वाला, बलवान और भावना को आर्द्र बनाने वाला होना चाहिए। यह उसको निर्बल बनाने वाला न हो बल्कि उसके मन को झुमाने वाला हो, लाड़ लड़ाने वाला न हो। मतलब यह, कि सब प्रकार का वाचन तेजस्वी, प्राणवान, कल्पना को बढ़ावा देने वाला और सरस होना चाहिए।

वाचन-सम्बन्धी यह साधारण विचार जहाँ-जहाँ भी शब्द-पोथी पर घटित हो, वहाँ-वहाँ वह ध्यान बाहर न रहे। शायद 'शब्द पोथी' की रचना करते समय साधारण, तथा स्वस्थ और अस्वस्थ वाचन के गहरे विचार में जाना ज़रूरी नहीं होता। फिर भी पोथी की रचना करने वाले के सामने यह आदर्श तो रहना ही चाहिए।

:4:

सबसे पहले तो आवश्यक यह है कि शब्द-पोथी की वस्तु में विविधता होनी चाहिए। हम समझते हैं कि बालकों की दुनिया छोटी होती है, किन्तु सचमुच बात ऐसी है नहीं। वैसे, बालक नन्हा

होता है पर उसकी शारीरिक, इन्द्रिय-विषयक और मानसिक गतिविधियों की दुनिया तो विशाल ही होती है। उसके अपने शरीर की, उसकी आवश्यकताओं की, घर की और गली-मुहल्ले की, माता-पिता आदि रिश्तेदारों की, अड़ोसी-पड़ोसियों की, पशुओं और पक्षियों की, धरती की और आकाश की, प्रकृति की और मनुष्य द्वारा रची गई वस्तुओं की, और ऐसी दूसरी चीज़ों की उसकी अपनी एक अलग दुनिया होती है। इनसे जुड़े शब्द बालक के लिए जीते-जागते, चैतन्य-युक्त और जादू-भरी शक्ति वाले शब्द होते हैं। इन शब्दों के द्वारा वह अपने को व्यक्त करता है, और दूसरों की बातों को समझ सकता है। उसके लिए ये शब्द उसका सारा व्यवहार चलाने वाले क़ीमती सिक्के होते हैं। इन शब्दों का ज्ञान उसके लिए एक शक्ति बन जाता है। ये उसके लिए आनन्द-दायक सिद्ध होते हैं।

इसी तरह जब बालक अपने जाने-बूझे शब्दों को पढ़ना सीख जाता है, तो उसको एक और ही प्रकार के आनन्द का अनुभव होने लगता है। इस नई शक्ति का उदय होने पर उसके बुद्धि आदि मानसिक कार्यों का क्षेत्र खुलने लगता है। अपना काम चलाने का एक नया साधन हाथ में आ जाने से उसको तुरत-फुरत अपना लेने का उसका उत्साह बहुत बढ़ जाता है। जैसे-जैसे वह इसमें तृप्ति का अनुभव करने लगता है, वैसे-वैसे उसको निर्मल आनन्द का अनुभव होता है।

बालक के ऐसे छोटे-छोटे आनन्दों को समझने के लिए हमको अपने बचपन की बातें याद रह जाएँ, तो अच्छा हो; अथवा हम अपने बालकों की ऐसी छोटी-छोटी विकासक गतिविधियों के आनन्द को समझने के लिए अपनी दृष्टि को विकसित कर लें, तो अच्छा हो।

जिस उमर में बालक पढ़ने लायक बनता है, उस उमर तक उसका शब्द-भण्डार काफ़ी बड़ा हो जाता है। शरीर की स्थूल आवश्यकताओं से लेकर मन के सूक्ष्म भावों को प्रकट करने वाले तरह-तरह के शब्द उसके इस भण्डार में होते हैं। अपने आस-पास की दुनिया की जानी-बूझी चीज़ों के नामों वाले शब्द भी उसमें होते हैं। यदि हम इन सब शब्दों की पोथियाँ बनाएँ, तो एक पूरी गाड़ी के वजन वाली पोथियाँ बन जाएँ! यदि ऐसा किया जाए, तो उससे बालकों का नुक़सान ही होगा। जब हम रोज़-रोज तरह-तरह की चोजें लगातार खाते रहते हैं, तो उन चीज़ों का सच्चा स्वाद लेने को हमारी जीभ की शक्ति क्षीण होने लगती है, और वह बिगड़ने लगती है। वैसी स्थिति में रोज़-रोज़ नई-नई चीजों की खोज कर के स्वाद को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना पड़ता है। इसके परिणाम-स्वरूप स्वाद के मामले में हमारी जीभ इतनी अस्वस्थ बन जाती हैं कि हर बार विविधता वाले आहार के बिना उसका काम चलता ही नहीं, यही नहीं बल्कि सादा और पौष्टिक आहार ही उसको बिलकुल बेस्वाद और नीरस लगने लगता है। बहुत विविधता वाले और विपुलता वाले वाचन पर भी यही बात लागू होती है। बहुत विशाल साहित्य की अपेक्षा अल्प मात्रा वाला प्रबल किन्तु विकासक साहित्य ही सच्चा मूल्यवान साहित्य होता है। साधनों की विपुलता की अपेक्षा उनकी विकासक शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। कुछ थोड़े किन्तु सुन्दर पाठ ऐसे ढंग से लिखे जाने चाहिए कि बालक उनको बार-बार पढ़ना चाहें। उनकी मदद से बालक अपनी वाचन-शक्ति का अच्छा विकास कर सकेंगे। पोथी के शब्द ऐसे होने चाहिए कि वे बालकों को खूब पसन्द आ जाएँ। शब्दों की पसन्दगी के कई कारण होते हैं। शब्दों के संग्रह तैयार करते समय इन सारे कारणों

को ध्यान में रखना चाहिए। सूचित पदार्थों और भावों के परिचय के कारण शब्द प्रिय लगते हैं, अथवा शब्दों में विद्यमान संगीत के कारण शब्द रुचिकर लगते हैं, अथवा शब्दों को लिखने की जो तरह-तरह की रचना की जाती है, उसके कारण या उसके मूल में रही कला-दृष्टि के कारण शब्द अच्छे लगते हैं, जात-पांत के आपसी सम्बन्धों से रहित ऐसे ढेरों-ढेर शब्द अनुभव में संकलित रहते हैं, जिन को तरह-तरह के नातों-रिश्तों वाले वर्गों में बैठाने का मौका मिलता है, तो इस कारण वे शब्द रुचिकर बन जाते हैं, अथवा नए-नए शब्द बालक को अनुभव के नए-नए क्षेत्रों में ले जाते हैं, इसलिए भी वे बालक को प्रिय लगते हैं।

इन सब विचारों के परिणाम-स्वरूप यह बात निश्चित की जा सकती है कि शब्द-पोथियों की वस्तु का निर्णय करते समय 'पसन्दगी', 'वर्गीकरण' और 'संख्या की मर्यादा' का अपना एक विशेष स्थान होता है।

अब शब्दों के चयन के लिए हम बाल-जीवन के मुख्य-मुख्य क्षेत्रों पर एक नज़र डालें।

जैसे, शरीर-क्षेत्र, इन्द्रिय-क्षेत्र, गृह-जीवन, विद्यालय-जीवन, प्रकृति, मनुष्य-कृति, समाज और धर्म आदि के क्षेत्र बाल-जीवन के क्षेत्र होते हैं।

इन क्षेत्रों के थोड़े-थोड़े शब्द निश्चित करके नीचे दी गई दृष्टि के अनुसार उनका वर्गीकरण करना चाहिए।

ऊपर गिनाए गए क्षेत्रों के अलावा इसमें शब्द-संगीत की, भाषा-व्याकरण की, और शिक्षण-विषयक विषय आदि की भी दृष्टि रखनी चाहिए।

इस शब्द-पोथी का स्वरूप कुछ इस प्रकार का हो सकता है।

हम प्रत्येक वर्ग के एक-एक प्रकरण की कल्पना करें। इस एक-एक प्रकरण में एक-एक पन्ने का एक-एक पाठ रहे। हर एक पन्ने में कितने शब्द रखने हैं, इसका निर्णय नीचे जो रचना दी गई है, उसको ध्यान में रख कर करें।

प्रकरण, 1 : पग, कान, गाल, पानी, होंठ, नख, नाक, बाल, छाती, गला, पेट, मुंह, कमर, सिर आदि।

प्रकरण, 2 : लड्डू, हलुवा, बरफी, पेड़ा, लपसी, जलेबी, श्रीखण्ड, रबड़ी, पूरी, कसार, खीर आदि।

प्रकरण, 3 : रोटी, दाल, खिचड़ी, गुड़, भात, छाछ, शकर, चपाती, सेव, दही, शहद, शाक, घी, आदि।

प्रकरण, 4 : धनिया, जीरा, हल्दी, नमक, मिर्च, हींग, खोपरा, राई, मेथी, सोंठ, लालमिर्च, इलायची, लौंग, जायफल, जावित्री आदि।

प्रकरण, 5 : रकाबी, प्याला, चम्मच, लोटा, घड़ा, डोल, थाली, मटकी, तवा, पलटा, हनारा, चिमटा, सँडासी, करछी, बेलन, चकला आदि।

प्रकरण, 6 : घी, तेल, दूध, शहद, दही आदि।

प्रकरण, 7 : अँगूठी, चूड़ी, चुन्नी, एरिंग, करधनी, जंजीर आदि।

प्रकरण, 8 : गाय, भैंस, बाघ, तेंदुआ, सिंह, भैंसा, बकरा, बकरी, सियार, भेड़िया, कुत्ता, बिल्ली, गधा, बछड़ा, आदि।

प्रकरण, 9 : चिड़ा, चिड़ी, मैना, कौवा, कौवी, मोर, मोरनी, हंस, गिद्ध, चील, खूसट, कबूतर, तोता, कोयल आदि।

प्रकरण, 10 : मेंढक, भौंरा, मक्खी, झिल्ली, मछली, मगर, साँप, पिस्सू, खटमल, मच्छर, जूँ, आदि।

प्रकरण, 11 : गुलाब, मोगरा, कनेर, जाई, जूही, आदि।

प्रकरण, 12 : आम, जामुन, बेर, खिरनी, खजूर, गूंदा, पपीता, अमरूद, अनार, केला, आदि।

प्रकरण, 13 : बबूल, बेर, बरगद, ताड़, अशोक, सैंजना बादाम, थूहर, खैर, बेल, रूखड़ा आदि।

प्रकरण, 14 : सुबह, दोपहर, साँझ, आधीरात, प्रभात आदि।

प्रकरण, 15 : माता, पिता, काका, मामा, दादा, भाई, बहन, भाभी, मौसी, बुआ, आदि।

प्रकरण, 16 : कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, धनतेरस, होली, दीपावली आदि।

प्रकरण, 17 : भावनगर, वरतेज, सीहोर, बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि।

प्रकरण 18, : गिरनार, शत्रुंजय, आबू, हिमालय, गंगा, यमुना, रावी, सतलज, चम्पा बावड़ी आदि।

प्रकरण, 19 : एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस आदि।

प्रकरण, 20 : गोल, चौकोन, त्रिकोण, लम्बगोल, पंचकोन, षट्कोण, आदि।

प्रकरण, 21 : मुलायम, खुरदरा, भारी, हलका, लम्बा, बौना, छोटा, बड़ा, घन, सीढ़ी, लम्बी सीढी, चौड़ी सीढी, आदि।

प्रकरण, 22 : फुटकर शब्दों का।

इसी तरह व्याकरण के प्रकरण रखे जा सकते हैं। उदाहरण के रूप में उसके कुछ प्रकरण नीचे दिए जा रहे हैं।

प्रकरण, 23 : मनुभाई, चिमनभाई, दिनुभाई, रामचन्द्र,

करमचन्द, नेमचन्द, अकबर अली, अब्दुल्ला भाई, अली भाई, आदि।

प्रकरण, 24 : परदा, जाली, खिड़की, पटिया, चाकू, पेन्सिल, आदि।

प्रकरण, 25 : लाल, काला, सफेद, छोटा, बड़ा आदि।

प्रकरण, 26 : दौड़ता है, लिखता है, परोसता है, खाता है, पीता है, आदि।

इस प्रकार भाषा के सब पदों के प्रकरण तैयार किए जा सकते हैं। आगे चलकर व्याकरण के दूसरे क्षेत्रों के प्रकरण भी दिए जा सकते हैं जैसे, समास का प्रकरण, लिंग का प्रकरण, वचन का प्रकरण आदि। यहाँ इन सब के पाठ देने की आवश्यकता मानी नहीं है। शिक्षक स्वयं ऐसे पाठ तैयार कर सकते हैं।

इन प्रकरणों में एक प्रकरण पारिवारिक शब्दों का भी जोड़ा जा सकता है। जैसे, पग, पगी, पगडण्डी आदि; अथवा हाथ, हथौड़ी, हत्था, हथियार, हथेली, आदि।

वैसे, व्याकरण के शब्द परिचित तो होते ही हैं, पर उनको व्याकरण के पाठों के रूप में आगे लाने से बालक शब्द के वाचन के साथ ही अप्रत्यक्ष रीति से व्याकरण से परिचित होने लगता है।

इन्हीं के साथ एक अक्षर वाले, दो अक्षरों वाले, तीन अक्षरों वाले और चार अक्षरों वाले शब्दों के प्रकरण भी जोड़े जा सकते हैं। ध्वनि-संगीत की दृष्टि से भी दूसरे दो-चार प्रकरण बढ़ाने ही होंगे। जैसे, (1) दादा, मामा, मौसा, मेरे, तेरे। (2) मीनी, चीनी, दादी, बीड़ी, सीढ़ी। (3) दौड़ो, फोड़ो, तोड़ो, मोड़ो, छोड़ो। (4) अंजन, खंजन, मंजन, रंजन। (5) अंग, रंग, तंग, गंग, चंग आदि।

अनुनासिक शब्दों के भी एक या एक से अधिक प्रकरण लिखे जा सकते हैं।

इनके अलावा, ध्वनि-प्रधान किन्तु अर्थ विहीन, अथवा अर्थ-सूचक अथवा अर्थ वाले शब्दों के भी प्रकरण लिखने लायक़ हैं। जैसे, गड़गड़ाहट, फड़फड़ाहट तड़तड़ाहट, खररर, सररर, पटापट, फटाफट आदि।

:5:

अब शब्द-पोथी की रचना के बारे में थोड़ा विचार करें। रचना के मुख्य अंगों में अक्षरों का क़द, उनकी मोटाई, उनका मोड़, उनकी रचना, अक्षरों का शृंगार और उनके आस-पास की सजावट का समावेश होता है।

अक्षर ठीक-ठीक बड़े होने चाहिए। दोहरी लकीरों वाले, तरह-तरह के रंगों से भरे, अथवा खिंची हुई लकीरों वाले अक्षर अधिक पसन्द किए जाएंगे, अक्षर चाहे छपे हुए हों या लिखे हुए हों, वे घुमावदार होने चाहिए। घुमावदार अक्षरों की अपनी एक शोभा होती ही है। अक्षरों के कदों में विविधता लाई जा सकती है। 'ऑर्नामेण्टल लेटर्स' के यानी आभूषण रूप अक्षरों के नमूने भी रखे जा सकते हैं। आम तौर पर यह चीज़ आगे की पुस्तकों में सध नहीं सकेगी। किन्तु शब्द-पोथियों में अक्षरों के चयन के बारे में बहुत-कुछ किया जा सकेगा। फिर भी इस बात की सावधानी तो रखनी ही होगी कि अक्षरों की शोभा का विचार ही कहीं मुख्य विचार न बन जाए।

शब्दों की सजावट व्यवस्थित और आकर्षक होनी चाहिए। इसके कोई नियम नहीं हो सकते। कला-रसिक शिक्षक ऐसी सजावट कर सकते हैं। हाथ से लिखने में अथवा छापने में शब्दों की सजावट करते समय उनमें नाना प्रकार की विविधता

लाई जा सकती है। बच्चों को रुचने वाली सजावट के कुछ नमूनों की चर्चा यहाँ करने योग्य है। जैसे, एक शब्द को एक ही पन्ने पर लिखा जाए। शब्दों को पन्ने पर खड़े, आड़े या टेढ़े रूप में लिखा जाए। गोलाकार भौमितिक आकृतियों के अगल-बगल में शब्दों को सजाया जाए। चौरस आकृति में, स्वस्तिक में या त्रिशूल के कोनों में शब्दों को सजाया जाए। निसैनी के खानों में अथवा छोटे-छोटे गोल चौकोनों को पास-पास रखकर उनके अन्दर शब्द लिखे जाएं। षट्कोण आकार के शहद के छत्ते का चित्र बनाकर उसके अन्दर शब्द लिखे जाएँ।

सजावट में मुख्य विचार शब्दों को आगे लाने का होना चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सौन्दर्य के प्रदर्शन में शब्दों का उपयोग साधन के रूप में न हो जाए।

ये शब्दपोथियां सचित्र बनाई जा सकती हैं। इस बात का आग्रह नहीं रखना चाहिए कि पोथियों में चित्र ज़रूर ही हों। सादी सजावट वाली चित्र विहीन पोथियां भी काम दे सकती हैं। कारण यह है कि इन पोथियों के मूल में अमुक उमर में बालक में उत्पन्न होने वाली शब्द-वाचन की सहज भूख होती है। चित्रों को उत्तेजक के रूप में स्थान नहीं देना है। चित्रों का स्थान आनन्द और आराम देने वाला हो सकता है। वाचन को अधिक अर्थपूर्ण बनाने अथवा चित्र की मदद से ही उसको अधिक प्रत्यक्ष करने की दृष्टि से शब्द-पोथी में चित्र न दिए जाएँ। शब्द पोथी को पढ़ाने का सच्चा आनन्द तो ध्वनि के उच्चारण में और शब्द के अर्थ को समझने में है। यदि यह चीज़ बालक में स्वत: प्रकट न हुई हो, यदि इसकी ऋतु आई न हो, तो उस दशा में सचित्र वाचन-पोथी एक असमय का और अस्वाभाविक उत्तेजक बन जाएगी, और वह बालक के विकास में विघातक ही बनेगी। शब्दों को सचित्र

बनाने से शब्दों के अमूर्त शब्द-चित्रों की रचना करने का आनन्द और शक्ति दोनों छिन जाएँगी। शब्द मूर्त और स्थूल दुनिया को वाणी की मदद से व्यक्त करने का एक साधन है। यदि हम शब्दों के साथ चित्र जोड़ते ही रहेंगे, तो इस शक्ति के विकास की कोई सम्भावना हम रहने नहीं देंगे। जो बात या भाव शब्द द्वारा पूरी तरह व्यक्त न हो सके, उसको चित्र की मदद से व्यक्त करने की बात एक अलग बात है। इस अर्थ में शब्द-पोथी को सचित्र बनाना ज़रूरी नहीं है। फिर भी अगर हम शब्दपोथी को यहाँ-वहाँ सचित्र बनाएँ, तो उसमें चित्र तो सुन्दर ही दें। ऐसा कोई चित्र तो दें ही नहीं, जो शब्द को नीरस बना दे।

कभी-कभी शब्दों को सजाया भी जा सकता है। शब्द के सिर पर या छोर पर कलगी-तुर्रा बनाया जाए, तो वह अच्छा लगेगा। अक्सर बालक खुद ही ऐसी सजावट वाली पोथी तैयार करते हैं। बाल मन्दिर के बालक ऐसी पोथियों की रचना करते हैं। किन्तु यह सब तो एक विशेष परिवर्तन के रूप में या नवीनता के रूप में किया जाता है। इसका अपना कोई स्थायी बन्धन नहीं होता।

इसी तरह शब्द-पोथी को एक और तरीके से भी सजाया जा सकता है। यह काम शब्दों का अर्थ व्यक्त करने में लिए नहीं होता, बल्कि इससे शब्द को एक सुन्दर भूमिका प्राप्त होती है। पुरानी पुस्तकों में प्रायः ऐसी सजावट की जाती थी। यह सजावट वाचन में बाधक नहीं होती थी। इससे तो पुस्तक को और उसके पन्नों को उलटने-पलटने में अधिक आनन्द का अनुभव होता था। इस प्रकार की भूमिकाएं विविध हुआ करती थीं। शब्द के पीछे वाले कोरे पन्ने पर केवल रंग के कुछ छींटे डाल दिए जाते थे अथवा कभी रंग का खाली हाथ ही फेर दिया जाता था। कभी आकाश और तारों के बीच दूज के चांद का आकार बनाने वाले शब्द होते

थे। चौकोन या लम्ब गोल आकार की खुदाई वाली चौखट की आकृति भी बनाई जाती थी।

इस प्रकार अगल-बगल में सजाए गए पन्नों को बालक खुशी-खुशी देखेंगे, वे शब्द पढ़ेंगे और एक-एक पन्ने को फुरती के साथ पलटते जाएँगे। प्रकृति की रचना में पढ़ने वाले को आनन्द के साथ आराम भी मिलता है।

: 6 :

रचना के बारे में एक-दो बातें और कहनी हैं। पहली बात तो यह है कि यदि शब्दपोथी सचमुच पोथी होगी, अर्थात् आड़े पन्नों वाली होगी, तो वह बालकों को अधिक अच्छी लगेगी। इसमें पन्नों को पलटने की और आकार की सुविधा रहती है। इसके अलावा, इसमें शब्दों की सजावट का काम अधिक सरल बन जाता है।

दूसरी बात यह है कि शब्दपोथी में शब्द बहुत अधिक नहीं होते, पर उसके पन्ने बहुत अधिक होते हैं। बालकों को एक पन्ने पर एक ही शब्द देखना और पढ़ना अच्छा लगता है। सजावट की दृष्टि से एक ही पृष्ठ पर एक से अधिक शब्द रखे जा सकते हैं। जिस तरह बालकों के लिए घूमने-फिरने की आज़ादी ज़रूरी होती हैं, उसी तरह उसको पोथी को भी एक ही पृष्ठ में सिमट जाने की अनिवार्यता से मुक्त रखा जाना चाहिए। फिर बालकों का अपना स्वभाव ऐसा होता है कि वे टुकड़े-टुकड़े में बहुत-सा काम करते हैं। उनके सामने पहले एक पृष्ठ आए, फिर दो पृष्ठ आएँ, यों एक के बाद एक पृष्ठ आते रहते हैं, तो इसमें उनको कठिनाई का अनुभव नहीं होता। सुन्दर टुकड़ों में सजाकर रखी गई पुस्तकों को वे बहुत फुरती से पढ़ सकते हैं। किन्तु उसी टुकड़े

की एक सिलसिले वार समूची पुस्तक उनके सामने रखने पर वे बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं। बाल-मन की इस वृत्ति को समझने वाले लोग जब बालकों को एक जगह सेदूसरी जगह चला कर ले जाते हैं, तो वे उसके सामने छोटे-छोटे निशान रखकर उनको चलाते हैं। वे बालकों से कहते है : 'चलो, उस खम्मे के पास चलो। चलो, अब उस नाले के पास चलो। चलो, अब उस पत्थर तक चलो।'

इस तरह जिस पोथियों के पन्ने झटझट पलटे जा सकते हैं, ऐसी पचास से लेकर सौ-सौ शब्दों वाली शब्द-पोथियों को बालकों ने अक्सर सौ-सौ बार पढ़ा है। इसके ऐसे अनेक उदाहरण सामने आए हैं। शब्द-पोथी ही को क्यों, वाचन-माला की सब पुस्तकों को भी इस दृष्टि से सजाना ज़रूरी है।

: 7 :

वाचन के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले बालकों के लिए 'शब्द-पोथी' पहला डग या क़दम है। शब्द-पोथी के बाद के क़दम हैं, 'चिट्ठी-वाचन' और दूसरी पोथियाँ। यद्यपि आज की 'बाल पोथियों में पहले क़दम के रूप में शब्द को स्थान दिया गया है, लेकिन वह सिर्फ एक या दो पन्नों में और बारीक अक्षरों में इस तरह दिया गया है कि वह बालक का ध्यान खींच ही नहीं पाता। और बालकों के जीवन में शब्द-वाचन की जो भूख जागती है, उसको तृप्त करने के लिए तो यह पूरे एक कौर के बराबर भी नहीं होता! 'बालपोथी' में तो एक पन्ना पूरा होने के बाद बालक को तुरन्त ही दूसरा पन्ना पलटना ही चाहिए। यह नया पन्ना वाक्यों का रहे। बालक को अनेकानेक शब्द पढ़ने की इच्छा और आवश्यकता होती है। फिर भी उसको शब्द छोड़कर वाक्य पर जाना पड़ता है। इस समय बालक को जिस तरह का व्यायाम

करके आगे बढ़ना होता है, उस तरह का व्यायाम करने का अवसर उसको मिलता नहीं है। परिणाम यह होता है कि बालक अधूरी तैयारी के साथ, आधा पेट खाकर आगे बढ़ता है, और कच्चा रह जाता है। इसलिए विद्यालय में पाठशाला या वाचन-माला, जो भी चले, उसकी रचना में आज हेर-फेर हो चाहे न हो, पर 'शब्दपोथी' का वाचन तो प्रत्येक पाठशाला में शुरू हो ही जाना चाहिए। यह विशेष रूप से वांछनीय है कि ऐसी पोथियाँ शिक्षक स्वयं तैयार करें। ऊँची कक्षाओं वाले बालक इस काम में उनकी मदद करें। छोटे बालक देखें कि ये पोथियाँ कैसे बनती हैं। इनको बनाने में कितनी मेहनत करनी होती है ,और कितनी सावधानी बरतनी होती है। इन सब बातों को जान और समझकर वे इन पोथियों का उपयोग भली-भाँति करना सीख लें। ऐसा करने से वस्तु के विषय में बालकों की रुचि का अनुसरण किया जा सकेगा। उसमें वातावरण का प्रतिबिम्ब पड़ा होने से बालक को वह पोथी अधिक सजीव लगेगा। यह सोचकर कि पोथी उसकी ही पाठशाला में बनी है, बालक के मन में उसको पढ़ने का शौक़ पैदा होगा। व्यक्ति-शिक्षण वाली पाठशाला में ऐसी एक-दो पोथियों से काम चल सकेगा। समूह शिक्षण वाली पाठशाला हो, तो वहाँ शिक्षक बारी-बारी से पोथी-वाचन की व्यवस्था करे।

प्रत्येक शिक्षक को यह प्रयोग करके देख लेना चाहिए। बालक तो शब्दों को लगातार पढ़ते ही रहेंगे। जब बालक उतावली करके वाक्यों का वाचन शुरू कर देते हैं, तो वे अपने वाचन को बिगाड़ते हैं। इसके बदले यदि वे ढेरों-ढेर शब्द पढ़कर अपनी वाचन-शक्ति का सुन्दर विकास करेंगे, तो वाचन के मामले में उनकी नींव मजबूत बनेगी। प्रत्येक पाठशाला शब्द-पोथी वाले इस साधन का उपयोग तो करके देखे ही। □

दूसरा खण्ड

चिट्ठी-वाचन

: 1 :

अगर आज के विद्यार्थी के हाथ में पाठशाला में चल रही कोई पुस्तक देकर हम उससे कहेंगे : 'इसमें से कुछ पढ़ो' तो अगर सुझाया हुआ पाठ कक्षा में चल चुका होगा, तो बिना इधर-उधर देखे विद्यार्थी उसको चटपट पढ़ देगा। पाठ में सूचित अर्थ अथवा भाव के कारण उसके चेहरे पर कोई हेर-फेर होना दिखाई नहीं देगा। पाठ पढ़ने का काम उसको एक बेगार-सा लगेगा। यदि कक्षा में पाठ चला ही नहीं होगा, तो विद्यार्थी यह कहकर छूट जाएगा कि यह पाठ तो चला ही नहीं है। यदि हम कहेंगे कि जरा पढ़कर तो दिखाओ, तो शायद वह पढ़ना शुरू करेगा, लेकिन पढ़ते समय कई ग़लतियाँ करेगा। और इस तरह वह अपनी मूल अश्रद्धा को उलटे बढ़ाएगा ही। उसके मन में तो यह बात पूरी तरह बस चुकी है कि कक्षा में पढ़े गए पाठ के अलावा दूसरी किसी चीज़ को वह अच्छी तरह पढ़ ही नहीं सकता।

अपनी कक्षा में चल रही पुस्तकों के अलावा दूसरी किन्हीं पुस्तकों को पढ़ने की बात विद्यार्थियों को शायद ही कभी सूझती है। न ऐसी पुस्तकें उनको कभी मिलती ही हैं। यदि संयोगवश ऐसी कोई पुस्तक उनको मिल ही गई, और उसको पढ़ने की इच्छा मन में जागी, तो एक नक़लनवीस कारकून जिस रुचि और समझ के साथ नक़ल का काम कर देता है, उसी तरह वह भी पढ़ देगा। बड़ी पूछताछ के बाद कुछ थोड़े ही बालक आपको ऐसे मिलेंगे, जिन्होंने घर में मौजूद अपने भाई-बहनों की या अपने

पिताजी की किसी पुस्तक को कभी खोलकर पढ़ा हो ।

ऊपर पाठशाला के जिस विद्यार्थी की बात कही गई है, उससे उसकी पढ़ी हुई पुस्तक पढ़वाने के बाद पुस्तक बन्द करवा कर अगर हम उससे पूछेंगे कि उसने क्या पढ़ा है, तो अगर पढ़ा हुआ पाठ कक्षा में चल चुका होगा, विद्यार्थी ने उसको कई बार पढ़ा, समझा और रटा होगा, तो वह उसका सार झटपट बना देगा। लेकिन उसकी बात से ऐसा नहीं लगेगा कि जिस चीज़ को उसने अभी-अभी पढ़ा है, उसी का सार वह बता रहा है। फिर, पढ़ते या सार बनाते समय उसका मन उस वस्तु के अर्थ अथवा भाव से तो जल-कमल की तरह अछूता ही दिखाई देगा। उसकी आँखों में पढ़ी हुई वस्तु के सार की चमक नहीं दिखाई पड़ेगी। उसके चेहरे पर ज्ञान के आनन्द की स्फूर्ति के अथवा प्रसन्नता के दर्शन नहीं होंगे। उसके लिए तो सारी क्रिया सामान्य ही रहेगी।

यदि कक्षा में पाठ चला ही नहीं होगा, तब तो यह सोचकर कि परीक्षक अथवा पढ़वाने वाले सार पूछेंगे, उसने जो दो-चार पंक्तियाँ जबानी याद कर ली होंगी, उन पंक्तियों को वह दोहरा देगा, और बाद में जड़-भरत की तरह खड़ा रहकर या तो अपना हाथ खुजलाएगा या आसमान के सामने ताकने लगेगा और कहेगा कि कक्षा में पाठ चला ही नहीं है।

यदि हम विद्यार्थी से चलते पाठ का सार पूछते हैं, तो वह संगीत की-सी लय में पाठ के पैरे-के-पैरे दोहरा देगा। इस तरह जो विद्यार्थी पाठ की वस्तु को ज्यों-की-त्यों अधिक-से-अधिक याद रख पाता है उसके बारे में कहा जाता है कि उसको सार अच्छी तरह याद है। इसका यह मतलब नहीं कि सार बताने वाला विद्यार्थी जानता है कि पाठ में क्या कहा गया है, उसकी संकल्पना क्या है, और उसका मर्म क्या है। जब हम थोड़ी गहराई में

उतर कर विद्यार्थी से पूछते हैं, तो तुरन्त पता चल जाता है कि असल में उसने कुछ समझा ही नहीं है।

विद्यार्थी ने अपनी अभ्यास-पुस्तक में से जिन शब्दों को रटा होता है, अथवा जिनको उसने सीखा होता है, उन्हीं के बारे में वह कुछ कह सकता है। इसमें एक शब्द के बदले दूसरा शब्द रखने की सारी क्रिया के अलावा और कुछ होता नहीं। इन शब्दों के अर्थों में रहस्य, खूबी चमत्कार, अनुभव और सामर्थ्य आदि क्या हैं, कैसे हैं, इनकी कोई जानकारी उनको होती ही नहीं है।

विद्यार्थी पाठ पढ़ देता है, वह उसका अर्थ बता देता है, और सार भी सुना देता है। हम मानते हैं कि विद्यार्थी सब कुछ समझ चुका है, किन्तु असल में पाठ ने उसके दिल के तारों को हिलाया ही नहीं होता। उसमें से उत्पन्न होने वाले भावों को उसने पकड़ा नहीं होता। उसने उनका रस चखा नहीं होता। उनके रहस्य को उसने समझा नहीं होता। पाठ उसके लिए एक जीती-जागती वस्तु नहीं बन पाता। पाठ उसकी रग-रग में रस का संचार नहीं कर पाता। पाठ उसकी बुद्धि को झकझोर नहीं पाता। पाठ उसको कल्पना- विहारी नहीं बनाता। पाठ उसकी भावना के तारों को झनझना नहीं पाता। इस सबका परिणाम यह होता है कि वाचन एक बेगार बन जाता है। इस बेगार में से निकला हुआ विद्यार्थी भाषा का सच्चा परिचय पा नहीं सकता। भाषा में अपना जो जादू होता है, उससे वह मंत्र-मुग्ध नहीं हो पाता उसके संगीत को सुनकर वह झूम नहीं पाता। भाषा के अर्थ के उस पार वाली दुनिया में वह पहुँच नहीं पाता। उसके लिए भाषा का मूल्य और महत्त्व उतना ही होता है, जितना एक व्यापारी के मन में अपने लेन-देन को समझने के लिए गणित का होता है। हमको सोचना है कि भाषा सिखाने में हम किस तरह से परिवर्तन करें कि जिन से

आज की यह स्थिति उत्पन्न न हो। शब्दों में या वाक्यों में रहे हुए अक्षरों के उच्चारण-मात्र को वाचन नहीं कहा जा सकता। केवल क, ख, प, च, ट अथवा A, B, P, S के समान मूलाक्षरों को मूलाक्षर की तरह पहचानने वाला किसी भी पुस्तक में से पढ़ सकता है, लेकिन यह पढ़ना, पढ़ना नहीं कहा जा सकेगा। वाचन का प्राण तो अर्थ को समझने में है। जब मनुष्य दो या दो से अधिक अक्षरों से बने शब्दों को अथवा शब्दों के ऐसे समूह को अर्थात् वाक्यों को, उनमें विद्यमान अर्थ के साथ समझकर पढ़ता है, तभी उसका पढ़ना-पढ़ना कहा जा सकता है।

शब्द-कोश में से शब्दों के अर्थ रटकर उसके सच्चे अर्थ को समझा नहीं जा सकता। शब्द-कोश की मदद से सच्चे अर्थ को सीखने की कोशिश में ग़लत अर्थ भी सीखा जा सकता है। भाव के अनुसार एक ही शब्द के अलग-अलग अर्थ निकालते हैं। फिर जो शब्द एक ही अर्थ के दिखते हैं, उनके अनुसन्धान से उसमें बहुत सूक्ष्म-से अन्तर पाए जाते हैं। शब्द-सामर्थ्य और शब्द-तोलन का बोध शब्द-कोश में से अथवा अर्थों वाली अभ्यास-पुस्तिका में से प्राप्त नहीं होता। परन्तु जैसे-जैसे भाषा अनुभव के साथ जुड़ती जाती है, वैसे वैसे शब्दों के अर्थ, शब्द-गत सामर्थ्य और शब्द-तोलन प्रकट होता रहता है। तलवार की शक्ति का पता तो तभी चलता है, जब उससे वार किया जाता है। उसी तरह जब शब्द अनुभव-गम्य बन कर मनुष्य को बेधता है, तभी वह सार्थक बनता है। इससे पहले तो वह एक ध्वनि-समूह-भर होता है। अनुभव की सूक्ष्मता और गहराई के साथ उन्हीं शब्दों के अर्थ सूक्ष्म और गहरे भाववाही बन जाते हैं। सारांश यह, कि अनुभव के बल के कारण, उत्कटता के कारण, गहराई अथवा उग्रता के कारण शब्द प्राणवान और तेजस्वी बनते हैं।

इस प्रकार जब शब्द के अर्थ का अनुभव करने वाला मनुष्य, ऊपर जिस अर्थ की चर्चा की है, उस अर्थ के साथ पढ़ता है, तब कहा जाता है कि उसने अर्थपूर्वक यानी समझकर पढ़ा है।

इसका यह मतलब नहीं कि इस तरह अर्थपूर्वक पढ़ने वाले सब लोग पढ़ते समय मन-ही-मन भाव-विभोर हो उठते हैं। जब अर्थ-पूर्वक पढ़ी गई चीज़ अन्तर की भावना के साथ जुड़ जाती है, तब वह अन्दर के तारों को हिलाती है। तभी पढ़ी गई चीज भावना-पूर्वक पढ़ी जाती है। भावना-पूर्वक पढ़ने का मुख्य आधार पढ़ने वाले की उस समय की मानसिक स्थिति भी होती है। एक चीज़ आज एक मनुष्य को अन्दर से हिला देती है, पर हो सकता है कि कल वह उसको न भी हिलाए। उसके पढ़ने और अर्थ समझने की रीति में कोई परिवर्तन न होने पर भी भावनात्मक अनुभव में अन्तर पड़ता ही रहेगा। समझ कर पढ़ना एक प्रकार से भावना-पूर्वक पढ़ने की पूर्व तैयारी-सी होती है। भावना-पूर्वक पढ़ी गई चीज विशेष रूप से आत्मलक्षी होती है, इसलिए वह शिक्षा का विषय नहीं बनती। वाचन-शिक्षण के क्षेत्र में केवल समझ कर पढ़ने की बात आ सकती है। यहाँ वाचन का अर्थ बहुत सतही किया है। ऐसे सतही वाचन में तालबद्ध, लयबद्ध, व्यवस्थित, शुद्ध उच्चारण वाले और संगीतमय वाचन का समावेश होता है। समझकर पढ़े गए वाचन में वाचन का यह अर्थ भी समा जाता है।

: 2 :

जिस समय से बालक दो अक्षरों द्वारा निकलने वाले अर्थ को समझकर दो अक्षरों का उच्चारण एक साथ करता है, उस समय से उसका पढ़ना या वाचन शुरू होता है। उदाहरण के लिए जब बालक 'प' और 'ग' को पढ़कर 'पग'-रूपी ध्वनि-समूह में जो अर्थ

सूचित है, उसको समझने लगता है तब कहा जाएगा कि उसने 'पग' शब्द को समभकर पढ़ा है। इस तरह समझकर पढ़ने की शुरुआत यथासम्भव जल्दी होनी चाहिए। अर्थात् इसकी शुरुआत उसी समय से होनी चाहिए, जब अक्षरों को पहचानना शुरू करने के बाद बालक दो या दो से अधिक अक्षरों को एक साथ रखकर उनका उच्चारण करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। असल में होना यह चाहिए कि आज की प्रचलित वाचनमालाओं में (प्राइमरों में) अथवा विद्यालयों में बालकों को जिस तरह बिना अर्थ समभे यंत्रवत् पढ़ने के अवसर मिल जाते हैं, वैसे अवसर उनको न मिलें, और वे शुरू से ही अर्थ को समझकर पढ़ने का रास्ता अपना सकें। जब बालक एक बार अर्थ वाले वाचन का रहस्य समझ जाएगा, तो बिना अर्थ समझे वह कुछ पढ़ ही नहीं सकेगा। अथवा वह जो कुछ भी पढ़ेगा, उसका अर्थ समभे बिना वह आगे बढ़ेगा ही नहीं। मतलब यह, कि बालक के सामने आरम्भ में वाचन इस प्रकार से आना चाहिए, वाचन का उसका पहला अनुभव ऐसा होना चाहिए कि उसका स्वाद उसके मन में बराबर बना रहे और उस क्षण से उसके सामने बौद्धिक आनन्द का मार्ग खुल जाए। बौद्धिक आनन्द की पहली किरण पाते समय बालक जिस सुख का अनुभव करेगा, उसको वह बार-बार पाने का प्रयत्न करता रहेगा।

मूलाक्षरों का ज्ञान होने तक बालक अक्षरों के आकार और उनकी ध्वनियाँ भर सीखता है। इस में वाचन का अथवा अर्थ का रस नहीं रहता। यह एक अलग बात है कि बालक इन ध्वनियों के उच्चारण में स्वयं रुचि दिखाता है। इस प्रकार के रस का अनुभव प्राप्त करने के लिए बालक किसी भी बड़ी पुस्तक को उठाकर उसमें से प, क, च, ड, का, की आदि पढ़ने लगता है और गम्भीर

भाव से पढ़ने वाले सामने आदमी की-सी गम्भीरता दिखाता है। अक्सर वह ध्वनि-समूहों का, बिना अर्थ समभे पढ़े गए शब्दों का, उच्चारण भी करता है। इस प्रकार के वाचन और उच्चारण की भी इसमें गुंजाइश है। इसका पुनरावर्तन स्वाभाविक है। लेकिन केवल इसीलिए इसको 'वाचन' का नाम नहीं दिया जा सकता। अलबत्ता, यही वह समय है, जब बालक के ध्वनि-समूहों को अर्थ की ओर, अर्थात समझकर पढ़ने की ओर ले जाना होता है। इस समय एक ऐसी चिनगारी झड़ाने की ज़रूरत है, जो बालक को एक नए ही क्षेत्र का दर्शन करा सके। उसको एक नया अनुभव करवा दे। इसका परिणाम यह होगा कि बालक उत्कण्ठ बन कर बार-बार वैसा अनुभव करना चाहेगा। यह अनुभव ऐसा होना चाहिए कि बालक को लगे कि वह खुद अचानक ही किसी नए वातावरण में, किसी नई प्राणदायिनी हवा में, और किसी नई दुनिया में आ पहुँचा है। ऐसा अनुभव करवाने की घड़ी एक बार चूक जाने पर फिर बाद में वैसा अनुभव करवाना सम्भव न होगा। ठीक समय पर ऐसा अनुभव न होने के कारण ही, क्या तो बालक, और क्या हम स्वयं, जब कोई चीज पढ़ते हैं, तो पढ़ने पर भी हम पढ़ी हुई वस्तु के मर्म का और उसकी गहराई का आनन्द नहीं ले पाते। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बालक जब किसी ध्वनि का अथवा ध्वनि-समूह का उच्चारण करने लगता है, तो समभना चाहिए कि उसको यह नया अनुभव करवाने की घड़ी आ चुकी है।

इसके लिए एक दूसरे साधन का उपयोग करना चहिए। इस साधन का नाम है—चल मूलाक्षरों की पेटी। इस पेटी में कई खाने होते हैं। इसमें गत्ते में से काटकर बनाए गए अक्षर रखे जाते हैं। अक्षरों में व्यंजन गुलाबी रंग के और स्वर नीले रंग के होते हैं। अक्षर के लिए बनाए गए हर खाने के तल में और उसकी बगल

में हर अक्षर का नाम लिखना चाहिए। इससे अक्षर को अथवा अक्षर वाले लाने को खोजना नहीं पड़ेगा।

अब हम यह देखें कि समझकर पढ़ने का पहला अनुभव हम बालक को कैसे कराएँ ? पहला धड़ाका किस तरह दिया जाए ? हमको यह काम बहुत सावधानी के साथ करना है।

पेटी में से दो अक्षर मँगवाइए। ये अक्षर ऐसे हैं कि इनको पास-पास रख कर पढ़ने से इनका कोई अर्थ निकल सके। उदाहरण के लिए, 'प' और 'ग' 'च' और 'ल', 'क' और 'घ और न'। बालक जब अक्षर लाए तो उनको पास-पास रखवाकर सिलसिले से बुलवाइए। शुरू में बालक पढ़ेगा, 'प....ग...।' बार-बार पढ़वाने पर पढ़ने की गति बढ़ेगी, और अन्त में बालक 'पग' पढ़ेगा। उस समय उसको एक नया अनुभव होगा। प...और ग...की अलग-अलग ध्वनियों के बदले वह 'पग' की एक नई ध्वनि सुनेगा। उस ध्वनि का उपयोग वह अपने शरीर के एक अंग के लिए बराबर करता रहता है। जब इस बात की ओर उसका ध्यान अचानक जाएगा, तो उसके मन में एक नया प्रकाश पड़ेगा। वह सोचेगा। 'अहा ! यह क्या चीज बनी ? 'प' और 'ग' का यह अर्थ है ?' इस आश्चर्य के साथ वह भाषा-क्षेत्र का यात्री बन चुकेगा। इसी समय यह समझने पर कि 'पग' नामक शब्द से बोलचाल की भाषा में वह जो समझता रहा है, उसी 'प' और 'ग' को एक साथ रखने और पढ़ने से 'पग' शब्द बनता है, वह अर्थ समझकर पढ़ने लगेगा। उसके लिए यह एक नई खोज बनेगी कि अक्षरों को पास-पास रखकर बोलने से अर्थ-सूचक ध्वनि बनती है। अब तक वह जो बोलता रहा, उसमें पास-पास रखे हुए अक्षरों की ही ध्वनियां थीं, इस बात को समझ लेने पर वह मन-ही-मन वाणी-मात्र को इन अक्षर-ध्वनियों के रूप में देखने लगता है। उसके लिए यह एक

नई खोज बन जाती है। अन्त में यह खोज उसको हिज्जों के क्षेत्र में ले जाती है। किन्तु यहाँ हम इस विषय की अधिक चर्चा नहीं करेंगे। संक्षेप में, इस समय से बालक भाषा के विविध-क्षेत्रों में जैसे, शब्द, वाक्य आदि की तरफ अपना पहला क़दम रखेगा, उसके मानसिक व्यवहारों में वृद्धि होगी, और इसी के साथ आनन्द का उसका क्षेत्र भी विशाल बनेगा किन्तु यह सब तभी हो सकेगा कि जब वह अनुभव करेगा कि दो ध्वनि-वाचक अक्षरों को साथ-साथ रखने से एक अर्थवाहक ध्वनि-समूह यानी शब्द बनता है। मतलब यह, कि यह तभी हो सकेगा, जब बालक को हम ऐसे अनुभव की दिशा में ले जाएंगे।

'पग' शब्द का वाचन पहली चिट्ठी हुई। यहाँ ज्योति जली। यहाँ से साहित्य के अध्ययन का श्रीगणेश हुआ।

अब हम आगे बढ़ें। जिसने वाचन का रहस्य जान लिया है, जिसने उसके आनन्द का अनुभव कर लिया है, वह अब पढ़ने योग्य सामग्री माँगेगा, और उस मार्ग को भी खोजेगा जिससे सुलगी हुई ज्योति बढ़कर महाज्योति बन जाए। यह मार्ग चिट्ठी-वाचन का ही मार्ग है। इस समूचे मार्ग का मतलब है, सिलसिले से बनी सीढ़ियों की एक लम्बी कतार। आइए, बालक के साथ हम इन सीढ़ियों पर धीरे-धीरे चढ़ें।

: 3 :

शुरू की चिट्ठियों के दो प्रकार माने जा सकते हैं। पदार्थों के नामों वाले शब्दों की लिखी हुई परचियां पढ़कर तदनुसार पदार्थ दिखाने अथवा लाने वाली चिट्ठियों का एक प्रकार। और, क्रियावाचक, शब्दों की लिखी हुई परचियों को पढ़कर तदनुसार क्रिया करने वाली चिट्ठयों का दूसरा प्रकार।

बालक कुछ थोड़े ही शब्द पढ़ना सीख जाए, तो इसके तुरन्त बाद उसको पदार्थ-वाचक चिट्ठियां देना शुरू किया जा सकता है। बालक को काम करने का आनन्द जितनी जल्दी देते बने, उतनी जल्दी देना इष्ट है। इससे उसकी मानसिक गतिविधियों में एक नई गतिविधि बढ़ती है। अक्सर जिन बालकों को दूसरे आनन्द कम प्रभावित करते हैं, उनको तो इस मार्ग के खुल जाने पर बहुत अधिक लाभ होता है। इसलिए चिट्ठी-वाचन शुरू करने के लिए वर्णमाला के अथवा बारहखड़ी के पूरे ज्ञान की बाट देखना जरूरी नहीं है।

चिट्ठयों के शब्द नीचे लिखे अनुसार हो सकते हैं। नख, पग, धन, फल, कल, नल, दल आदि।

जैसे-जैसे बालक बारखड़ी जानने लगे, वैसे-वैसे नीचे लिखे क्रम से उसको ऐसी चिट्ठयाँ दी जा सकती हैं :

1. हाथ, नाक, कान, बाल, दाल, ताल।
2. छाती, पाती, छुरी, सीढ़ी, जूती, पाटी, पानी।
3. मेज, कुरसी, कुरता, पेट, किताब, घड़ी, गुड़, मीनार, मिकैनो।
4. चिट्ठी, अक्षर, त्रिकोण, प्याला, पुस्तक, चश्मा, नाश्ता, आइस्क्रीम।

आरम्भ में जब तक बालक काना, मात्रा और तीन अक्षरों वाले शब्दों तक न पहुंचा हो, तब तक चिट्ठी-वाचन के इस खेल को इस तरह चलाया जाए। बालक को ऊँची आवाज में कहिए कि इस चिट्ठी में जिसका नाम लिखा है, वह लाने लायक हो, तो लाओ, और दिखाने लायक हो, तो दिखाओ, इस पर बालक चिट्ठी पढ़कर 'कान' दिखाएगा, और 'धन' ले आएगा। किन्तु जब बालक काना-मात्रा वाले शब्द पढ़ने लग जाए, तो उसकी

चिट्ठी में 'दिखाओ' और 'लाओ' शब्द लिखिए। आरम्भ में इन दो क्रियापदों को लेना उचित है। ये दो क्रिया पद ज्यों-के-त्यों रहें, और नए-नए पदार्थ-सूचक शब्द पढ़े जाएँ, तभी इस प्रकार की चिट्ठियों का सच्चा उपयोग हो सकेगा। यही होना भी चाहिए।

शुरू-शुरू की चिट्ठियाँ गत्ते के दो इंच लम्बे-चौड़े टुकड़ों पर लिखी जानी चाहिए। अच्छा हो, यदि ये चिट्ठियाँ किसी रंगीन पेन्सिल से या स्याही से लिखी जाएँ। उनका स्वरूप यहाँ दिए गए नमूने का-सा हो।

चिट्ठी की वस्तु बाल-दुनिया से जुड़ी हुई हो, और विद्यालय की परिस्थिति के अनुरूप हो। इस प्रकार की चिट्ठियों को वर्गों में बाँट कर उनको वर्ग के क्रम से अलग-अलग पेटियों, पोटलियों अथवा डिब्बों में रखा जाए। आपस में गड्ड-मड्ड होने पर चिट्ठियों को झटपट खोज कर उनको वर्ग के क्रम से जमा सकने के लिए उनकी पीठ वाले काग़ज़ पर निशान बना देने चाहिए। बालक खुद ही रंगीन काग़ज़ों के अथवा भूमिति की आकृतियों के निशानों वाली चिट्ठियों का वर्गीकरण खुशी-खुशी करेंगे। यह भी उनका अपना एक स्वतन्त्र खेल बन जाएगा। खेल को खेल चुकने के बाद बालक को चिट्ठियां और दूसरा सारा सामान फिर जहाँ का तहाँ रख देना चाहिए। बालक को इसकी तालीम देना ज़रूरी है। इसकी दृष्टि से भी इस तरह वर्ग के क्रम वाली और निशानों-वाली चिट्ठियाँ अधिक सहायक होंगी।

: 4 :

जैसे खेल के लिए चिट्ठियों की आवश्यकता है, वैसे ही चिट्ठियों में लिखे पदार्थों की अथवा परिस्थिति की भी आवश्यकता होती है। ये पदार्थ या तो किसी टोकनी में रखे रहते हैं, या कक्षा में

दूसरे काम-काज के लिए अलग-अलग पड़े होते हैं। इस खेल को खेलने के लिए बालक पहले उस चिट्ठी को मन-ही मन पढ़े, जिसकी बात पहले लिखी जा चुकी है, बाद में चिट्ठी में लिखे पदार्थ को अपनी अंगुली दिखाए या उसको उठा कर ले आए, अथवा चिट्ठी को ही उसके ऊपर रख आए। बालक को जैसा जँचे वैसा ताल-मेल वह पदार्थ और चिट्ठी के बीच बैठाए। शिक्षक घूमते रहें, और देखते रहें कि बालक का खेल ठीक चल रहा है या नहीं। ठीक चलता हो तो 'ठीक' कहते रहें। अगर बालक कोई ग़लती कर रहा हो तो उसको उसकी ग़लती उसी समय हरगिज न दिखाएँ। हाँ, शिक्षक इस बात का अन्दाज लगा लें कि बालक ग़लती क्यों कर रहा है, और किसी दूसरी तरकीब से उसको ठीक दिशा में मोड़ दें। शिक्षक के 'ठीक'—सूचक प्रमाण पत्र को सुनकर बालक दूसरी चिट्ठी उठाए। वह उसके साथ खेले। फिर तीसरी चिट्ठी ले। इस तरह खेल बराबर चलता रहे। बालक चिट्ठियाँ पढ़ते जाएँ और खिलौने या दूसरी चीज़ें लाते जाएं। इस तरह लाई गई सब चीज़ों को सुन्दर ढंग से सजाया जाए, उनकी मदद से मन्दिर की अथवा मण्डल की रचना भी की जाए। जब खेल खेल लिया जाए, तो खेल के लिए इकट्ठा की गई चीज़ों को वापस उनकी जगहों पर रख दिया जाए। यह बात बालकों की मरजी पर छोड़ दी जाए कि वे साथ में बैठ कर पढ़ें या अलग-अलग बैठकर अकेले-अकेले पढ़ें। जैसे-जैसे बालकों को स्वयं पढ़ने में मजा आने लगेगा, उनकी रुचि जागने लगेगी, वैसे-वैसे वे वस्तुओं के लिए चिट्ठियाँ नहीं पढ़ेंगे, बल्कि चिट्ठियाँ पढ़ने के फलस्वरूप वे वस्तुओं को लाएँगे या उनको हाथ लगाएँगे। चिट्ठी-वाचन का आकर्षण बढ़ाने के लिए विशेष रूप से बाज़ार से खरीदकर लाए गए खिलौने इकट्ठा करना ज़रूरी नहीं है। स्वयं बालकों ने ही हमको समझा दिया है कि चिट्ठी-वाचन के

आनन्द की तुलना में खिलौनों से खेलने का आनन्द उनकी दृष्टि में तुच्छ ही है। इस विषय में एक घटना उल्लेखनीय है। एक बार डॉक्टर मारिया मोन्तेस्सोरी ने अपने विद्यालय के बालकों में चिट्ठी-वाचन का रस जमाने के लिए खिलौनों के नामों वाली चिट्ठियाँ तैयार करके बालकों से कहा : 'जिनको इन खिलौनों से खेलना हो, वे इनके नाम की चिट्ठियाँ पढ़ें। किन्तु चिट्ठी में जिस एक खिलौने का नाम निकला हो, उसी खिलौने के साथ बालक तब तक खेले, जब तक उसका मन तृप्त न हो जाए। दूसरे खिलौने से खेलने के लिए दूसरी चिट्ठी पढ़नी होगी।' कुछ देर तक बालकों ने खिलौने लिए और वे उनके साथ खेले, लेकिन बाद में वे खिलौने चिट्ठी-वाचन के आनन्द में बाधक बनने लगे। चिट्ठी-वाचन के विषय में हमको भी इस बात का ध्यान रखना होगा। बालकों को चिट्ठी पढ़ने में ही इतना आनन्द आने लगता है कि किसी वस्तु का कोई आकर्षण उनके मन में रहता ही नहीं।

यह खेल बड़े उत्साह के साथ खेला जाता है। विद्यालय में सबको एक नया ही अनुभव होता है। जब शाला में ऐसे खेल खेले जाएँगे, तो वहाँ चारों तरफ से तरह-तरह की चीजें इकट्ठा होने लगेंगी। बालक एक नई दृष्टि से वस्तुओं को फिर-फिर देखने के लिए आकर्षित होंगे। जब इन्द्रिय-शिक्षण का काम चल रहा था, तब वस्तुओं से रूप-रंग बालकों को इशारा कर-करके अपनी ओर खींचते थे। वे उनको पुकार-पुकार कर कहते थे : 'आइए, आइए, यह 'लाल रंग' मैं यहाँ हूँ। यह 'त्रिकोण' मैं यहाँ हूँ। यह 'धन' मैं यहाँ बैठा हूँ।' यह 'सीढ़ी' मैं यहाँ लेटी हूँ। इस खेल के चलते वस्तुएँ कहेंगी : 'मुझको ले जाइए न? मेरा नाम 'चौकोन' है। मेरा नाम 'काँच' है। मेरा नाम 'रूमाल' है। मेरा नाम 'साबुन' है। आप तो मुझ को पहचानते ही हैं। तभी स्वयं बालक ही शिक्षक

से पूछेंगे। 'सप्तकोन कहाँ है ?' आदि-आदि। इस तरह बालक नए-नए शब्द पढ़कर नई-नई चीज़ों को पहचानना भी सीखेंगे। इस खेल को खेलते समय बालकों को चलने-फिरने की क्रियाएँ करनी ही होंगी, इसलिए खेल के साथ अपने आप ही शारीरिक व्यायाम भी होता रहेगा।

: 5 :

शुरू-शुरू की चिट्ठियों से लेकर आखिर तक की चिट्ठियों के विषय में एक नियम का पालन आवश्यक है। जैसे-जैसे बालक चिट्ठियाँ पढ़ने में आगे बढ़ने लगे, वैसे-वैसे भले ही हम इस नियम का पालन कठोरता के साथ न करवाएँ, और व्यक्तिगत रूप से बालक को थोड़ी छूट भी दें। वह नियम यह है कि बालक चिट्ठी पढ़कर तदनुसार काम करे, और फिर पढ़ी गई चिट्ठी को शिक्षक के सामने खुली आवाज के साथ पढ़े। ऐसी प्रथा चलाने से मूक वाचन के साथ मुंह से बोलकर पढ़ने की भी तैयारी हो सकेगी। जब बालक चिट्ठी के अनुसार वस्तु लाता है, तो उससे यह पता तो चल जाता है कि वह पढ़ सकता है। किन्तु उसके उच्चारण आदि शुद्ध और स्पष्ट हैं या नहीं, बालक आधे अनुमान से या एक-दो युक्ति-प्रयुक्ति से अपना काम चलाता है, या अपना काम बहुत-कुछ आकस्मिक रूप से चलाता रहता है, आदि बातों का पता इस प्रकार मुख-वाचन करवाते रहने से चलता रहेगा। इस विषय में शिक्षक बालक की शक्ति और अशक्ति को जानकर उसके लिए उचित चिट्ठियों की व्यवस्था कर सकेगा।

ऐसे खेलों के चलते शिक्षक को चाहिए कि वह प्रत्येक बालक के भाषा-विकास का और भाषा में उसकी रुचि का अध्ययन करता रहे। इस अवलोकन से शिक्षक को भी बहुत कुछ जानने-समझने को मिलता रहेगा। शिक्षक को बहुत बारीकी के साथ यह तो

देखना ही है कि कौन-सी चिट्ठियाँ चलती हैं, और कौन-सी नहीं चलतीं।

ऊपर जिन गत्ते वाली चिट्ठियों की बात कही गई है, बालक उन चिट्ठियों को खुद ही पढ़कर उनके साथ खेलता रहे, तो यह उत्तम ही है। फिर भी कुछ दूसरे प्रकार के खेलों का विकास किया जा सकता है।

जैसे, शिक्षक पट्टी पर या तख़्ती पर शब्द लिख दे, अथवा अलग से लिखे, और उसको पढ़कर बालक वस्तु लाए या दिखाए। खर्च बचाने की दृष्टि से यह रीति अच्छी है। समूहगत शिक्षण में भी यह रीति काम दे सकती है। ऐसी चिट्ठियों की मदद से बालक आपस में थोड़े सहयोग का विकास कर सकते हैं। किन्तु इसका कोई लेखा नहीं रखा जा सकता। इस कारण इसमें से बालकों के विकास के इतिहास को खोजा नहीं जा सकता। इसी तरह इसमें चिट्ठियों के प्रायोगिक मूल्य आदि का निर्णय करने के साधन भी सुलभ नहीं रहते। फिर भी यदि बुद्धिशालो शिक्षक इस प्रवृत्ति के मूल हेतु की रक्षा करके काम करे, तो वह कम खर्च में कई प्रकार के खेल खेला सकता है। पहले गत्ते की जिन चिट्ठियों की बात कही गई है, वे चिट्ठियाँ और रेलवे वाले पार्सलों पर जो चिट्ठियाँ लगाते हैं, वे चिट्ठियाँ कुल मिलाकर बहुत सस्ती पड़ती हैं। यदि सावधानी के साथ उपयोग किया जाए, तो ये ही चिट्ठियाँ सालों तक काम दे सकती हैं। इसके कारण पैसों का और शक्ति का खर्च बचता है और बालक शिक्षक से स्वतंत्र रहकर अपनी मरजी से काम करने लगता है। इसमें यह अन्तिम लाभ सबसे बड़ा लाभ है।

: 6 :

अब हम शुरू वाली चिट्ठियों के दूसरे प्रकार के बारे में चर्चा कर लें। 'दिखाइए' और 'लाइए' वाले प्रकार की चिट्ठियों की

मर्यादा बहुत अल्प है । जब एक बार बालक को शारीरिक क्रिया के और बौद्धिक गति-विधि के आनन्द का अनुभव हो जाता है तो वह बराबर उसके पीछे पड़ा रहता है । उसको जो एक नया आह्लादक अनुभव हुआ है, उस अनुभव को वह बार-बार दोहराना चाहता है, वह वाचन के अपने क्षेत्र को बढ़ाना चाहता है । वस्तुओं की दुनिया के चुक जाने पर वह क्रियाओं की दुनिया में प्रवेश करना चाहता है । ऐसे समय में हम उसको कुछ क्रिया-सूचक चिट्ठियाँ दे सकते हैं ।

पढ़ने का अपना एक आनन्द होता है । उसी तरह क्रिया करने का भी अपना एक आनन्द होता ही है । इसके कारण क्रिया-सूचक चिट्ठियों का आनन्द दुगुना हो जाता है । हर एक चिट्ठी एक नई क्रिया करवाती है । इस कारण वह चिट्ठी 'दिखाइए' और 'लाइए' वाली चिट्ठी की तुलना में अधिक प्रिय बन जाती है । क्रिया-सूचक चिट्ठी पढ़कर क्रिया करने वाले बालकों को देख-देख कर चिट्ठी न पढ़ सकने वाले बालक भी उनके साथ वैसी क्रिया करने लगते हैं । वे उनके साथी बन जाते हैं । कुछ बालक क्रिया का आनन्द लूटने के लिए चिट्ठी पढ़ने वाले बालकों के मित्र, साथी अथवा सहायक बन जाते हैं । कुछ बालक कहते हैं : 'हम चिट्ठी पढ़ना नहीं जानते । तुम चिट्ठी पढ़कर हमको दो ।' कुछ बालक तो चिट्ठी पढ़ने के लिए ही अक्षर आदि सीखना शुरू कर देते हैं, और कुछ तो सचमुच की चिट्ठी लिखवाकर और शिक्षक से अथवा और किसी से पढ़वा कर वैसी ही क्रिया करते हैं । छोटा शरीर विकास चाहता है । क्रिया से केवल शारीरिक व्यायाम होता है । बालक अपनी क्रिया-शक्ति का विकास क्रिया द्वारा ही करना चाहता है । अतएव किसी क्रिया के लिए दौड़ना उसको सहज लगता है । इसके अलावा, चिट्ठी पढ़ने का बौद्धिक आनन्द तो

उसको मिलता ही है ।

आमतौर पर सादी क्रिया-चिट्ठियाँ ऐसी होनी चाहिए : दौड़ो, सोओ, घूमो, लिखो, रोओ, कूदो, लेटो, झुको, आओ, हँसो, बैठो, खाओ, खेलो, जाओ, नाचो, उठो, चलो, पढ़ो, बोलो, उछलो ।

शुरू में वे ही क्रियाएँ लेनी चाहिए, जिनको बालक आसानी से कर सकें, जो विद्यालय के वातावरण में सहज ही की जा सकें, जो एकदम स्थूल हों, और बड़ी हद तक शरीर द्वारा ही करके दिखाई जा सकती हों । ऐसी क्रियाएँ भी ली जाएँ, जिनको बालक दिन-रात करते रहते हैं, जिससे बालकों का ध्यान भाषा की दृष्टि से उनकी तरफ जा सके, अथवा जिससे क्रियाओं के लिए उनको उचित भाषा मिल सके ।

जब इस प्रकार की क्रिया-सूचक चिट्ठियाँ पढ़ने का सिल-सिला शुरू होता है, तो पूरे कमरे का सारा दृश्य ही बदल जाता है । सब बालक किसी-न-किसी क्रिया को करने में लगे दीखते हैं । कोई दौड़ता है कोई कूदता है, कोई हँसता है, कोई पढ़ता है, तो कोई लिखता है । चारों तरफ हलचलों की ही एक हवा खड़ी हो जाती है । बालक की गम्भीरता भी बड़े आदमी की गम्भीरता के समान ही होती है । उसके चेहरे पर मन के और शरीर के आनन्द की छटा साफ़ ही दिखाई पड़ती है । उस समय एकाग्रता, क्रिया में तल्लीनता और प्रसन्नता के अनेकानेक प्रकार देखने को मिलते हैं । हलचलों का एक समन्दर-सा उछलने लगता है, फिर भी उसमें कहीं अव्यवस्था नहीं दिखाई पड़ती । दौड़ना, कूदना, सब चलता रहता है, फिर भी उसमें धमाचौकड़ी की हालत नहीं बनती । सामूहिक शिक्षण वाली कक्षा की जड़ शान्ति के बदले विकास की आनन्ददायक ऊर्मियों की झनझनाहट वाली क्रियाओं की गूँज सुनाई पड़ती है । हर एक बालक किसी-न-किसी हेतु से

इधर-उधर घूमता दिखाई पड़ता है। इस कारण कक्षा छोटे नागरिकों के बाजार का या चौक का रूप ले लेती है, फिर भी वहाँ चौराहे की गड़बड़ी नज़र नहीं आती।

जब बालक चिट्ठियाँ बदलेंगे, तो उनके साथ काम भी बदलता रहेगा। उस समय उनको रुचि की भिन्नता के दर्शन होते रहेंगे। दौड़ने का शौक़ीन बालक बार-बार दौड़ने की चिट्ठी लेगा। विनोद-प्रिय बालक 'हँसो', 'रोओ' की सूचक चिट्ठियों का उपयोग करेगा। आराम-पसन्द बालक इस खेल में भी 'बैठो' या 'सोओ' सूचक चिट्ठियाँ खोजेगा। बाहर घूमने का शौक़ीन बालक अपनी मन-पसन्द चिट्ठी खोज लेगा। बालकों की तरह-तरह की माँगों के कारण क्रिया-सूचक चिट्ठियों का संग्रह भी बढ़ता रहेगा।

: 7 :

जिस समय मैं यह लेख लिख रहा हूँ, उसी समय जिन बालकों ने तीन साल पहले चिट्ठियाँ पढ़ी थीं; वे बालक उन पुरानी चिट्ठियों को अचानक ही फिर पढ़ने लगे हैं। इन चिट्ठियों को पढ़ना आज तो उनके लिए एक मामूली-सा खेल है, क्योंकि वे तो आज बड़ी-बड़ी पुस्तकें भी पढ़ सकते हैं। फिर भी उनका आनन्द तो वैसा का वैसा ही है। इसके अलावा, उनके इस आनन्द में एक नवीनता जुड़ गई है। यह नवीनता इसलिए है कि पुराने मित्रों से मिलने का जो अनुभव होता है, उसका लाभ वे ले रहे हैं। अभी-अभी उन्होंने चिट्ठी में दो गई कविता गाई। बाद में रास क्रीड़ा के साथ उसका गीत गाया। इसमें उनको एक प्रकार का मजा भी आता है। मजा इसलिए कि वे सोचते हैं: 'ओहो! एक समय ऐसा भी था, जब हम यह सब किया करते थे। उस समय इनको करने में जिस कठिनाई का अनुभव किया था, वह कठिनाई आज रही नहीं है।' जो बातें हो चुकी हैं अथवा समझ में आ चुकी हैं, उनकी

पुरानी यादों को दोहराने में अथवा लिखने में जो आनन्द आता है, वही आनन्द उन क्रियाओं को फिर दोहराने में भी आता है। अपनी उमर के हिसाब से गणित आदि का काम करने के बाद पुरानी चिट्ठियाँ पढ़कर बालक एक प्रकार के विराम या विश्राम के आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। यह लिखते समय मेरे सामने जो दृश्य उपस्थित हुआ है, वह मुझको चिट्ठी-वाचन के पुराने दिनों की याद दिला रहा है।

एक गुजर चुकी बात के बावजूद उसमें आज भी एक प्रकार का जो मज़ा आ रहा है, वह दोनों प्रकार का है, विकासक भी है, और विश्रामदायक भी है। विश्राम के लिए खेला जाने वाला यह खेल अपने आप में एक विकासक खेल बन जाता है।

मनुष्य की अपनी प्रगति के साथ ही एक-की-एक बात अलग-अलग समय में उसको अलग-अलग अनुभव करवाती है। जब अपनी सयानी उमर में हम बालपोथी पढ़ जाते हैं, तो उसके मूल में हमारा हेतु एक भिन्न ही प्रकार का दिखाई देता है।

इसी तरह पढ़ी हुई पुरानी चिट्ठियों को फिर पढ़ने के मूल में मन बहलाव का भी एक हेतु हो सकता है।

संक्षेप में, कहने का मतलब यह है कि तीन सालों के बाद भी जब चिट्ठियाँ पढ़ने में इतना मजा आता है, तो उससे पता चलता है कि चिट्ठियाँ पढ़ने का खेल एक सच्चा खेल है। अभी-अभी चिट्ठी पढ़ने वाले इन बालकों की परीक्षा ली। बालकों को ऐतिहासिक कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। उनके पास एक संदेशा भेजा गया: 'जिनको ऐतिहासिक कहानी सुननी हो, वे यहाँ आ जाएँ।' बालकों ने जवाब में कहा: 'हमको नहीं सुननी है। पुरानी चिट्ठियाँ पढ़ने में हमको बहुत मजा आ रहा है।' उनको सच्चा मजा आ रहा है। पुराने अनुभवों को ताजा करने का

आनन्द आ रहा है। बालकों ने बाल मन्दिर को अपनी आवाजों से गुँजा दिया है, और हलचलों से भर दिया है मैं देख रहा हूँ कि चिट्ठियों के अनुसार मुझ को नमस्कार करने में, प्रणाम करने में, मेरे सामने आकर बैठ जाने में बालक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। उनके आसपास दूसरे बालक इकट्ठा होते हैं और उनके आनन्द में ख़ुद भी आनन्द का अनुभव करते हैं। वे कहते हैं : 'ये दूसरे बालक हमारे खेल में बाधक बन रहे हैं।' मैं उन दूसरे बालकों से कहता हूँ : 'तुम सब भी पढ़ो।' बच्चे दूसरी चिट्ठियाँ उठा लेते हैं। बच्चों का एक दल अभी पढ़ने के लिए बाहर गया है। लगता है कि इसकी छूत फैलेगी।

अब तक बालक के जीवन में दौड़ो, कूदो वग़ैरा आज्ञाएँ बाहर से आती थीं। उसकी आज्ञापालकता बाहर के कारण थी। बाहर से आने वाले हुक्मों पर अमल करते समय उसके चेहरे पर अरुचि और नाराज़ी दिखाई देती थी। अब इस ढंग की चिट्ठियाँ पढ़कर वह ख़ुद ही अपने आपको हुक्म है, और ख़ुद ही उस हुक्म का पालन भी करता है। वह ख़ुद अपने अनुकूल आज्ञा करके आज्ञा करने वाले में अपेक्षित चतुराई का और विवेक का परिचय देता है। इस आज्ञा का पालन करते समय वह बेहद ख़ुश होता है। आज्ञा का अनुसरण करने के लिए वह कष्ट उठाता है, जहाँ ज़रूरत होती है, वहाँ दूसरों की मदद लेता है, और आज्ञा का पालन करने के बाद वह शान्ति का और आत्म-निर्भरता के आनन्द का अनुभव करता है। अपने आपको हुक्म देकर और अपने अधीन रहकर बालक अनजाने ही स्वाधीन बनने के मार्ग पर चलने लगते हैं। वे अनुभव करते हैं, मानो अपने अन्दर से अपनी अन्तरात्मा को सुनकर वे सब कुछ कर रहे हैं। अर्थात् वे अपनी गतिविधियों के प्रति बहिर्मुख बनते हैं। अपने और अपने

हुक्म के बीच और हुक्म के मूल में दूसरा कोई होता नहीं है, इसलिए हुक्म मानने या न मानने के बारे में अर्थात् चिट्ठी पढ़ने या न पढ़ने के बारे में ख़ुद ही निर्णय करके बालक स्वतन्त्रता का अनुभव करता है। क्रम-क्रम से अन्त:स्फूर्ति के कारण जिन सब क्रियाओं में से बालक में वास्तविक व्यवस्था अथवा नियमन प्रकट होता है, उसी प्रकार की यह भी एक क्रिया होती है।

बालकों को अपने शरीर के विकास के लिए जिसकी आवश्यकता रहती है, वह चीज़ उनको मिलती है। मन-ही-मन बहुत ख़ुश होकर वे चिट्ठियों पर टूट पड़ते हैं। चिट्ठियाँ उनको क्रिया का आनन्द देने वाली उनकी मित्र बन जाती हैं। ये चिट्ठियाँ और इनसे पहले दी गई सारी चिट्ठियाँ बालक को अधिक-से-अधिक क्रियाशील बनाती हैं। क्रिया करके बालक इस बात का सक्रिय अनुभव प्राप्त करता है कि प्रत्येक शब्द के मूल में रहा हुआ अर्थ क्रिया के रूप में कैसे व्यक्त होता है। इसी समय से वह हमेशा प्रत्येक क्रियावाचक शब्द के अर्थ को जीवित क्रिया में व्यक्त करना चाहेगा। तभी से वह जहाँ-जहाँ भी क्रियावाचक शब्द पढ़ेगा, वहाँ-वहाँ वह या तो वैसी क्रिया करेगा अथवा मानसिक रूप से क्रिया का अनुभव करेगा। इसी समय से बालक जो-जो भी छोटी-मोटी क्रियाएँ करता होगा, उसको शब्द देना सीखेगा, अर्थात् क्रिया द्वारा होने वाले अनुभव को वह शब्द द्वारा व्यक्त करना सीखेगा। स्थूल क्रियाओं के विषय में ऐसा करने की वृत्ति के विकसित हो जाने के बाद वह हर किसी सूक्ष्म या मानसिक विषय में भी ऐसा ही करेगा। बोलने से पहले वह देखेगा कि मैं जो अमुक क्रिया कर रहा हूँ, उसके लिए वह शब्द उपयुक्त है? अमुक जो शब्द बोला जाता है, उसमें यह क्रिया सही है? इस प्रक्रिया के कारण बालक के शब्द-सामर्थ्य का और शब्द के सन्तुलन का विकास होगा।

क्रिया-सूचक चिट्ठियों को पढ़ने से बालक के अनुभव में एक और बात प्रकट होगी। यह बात है, क्रियापद के 'पद' को पहचानने की। यहाँ उसका केवल परिचय है। 'संज्ञा' तो अभी सीखनी है। किन्तु क्रियावाचक शब्द का बल कितना है, इसका अनुभव काफी है। बालक यहाँ इस बात को भी समझ लेता है कि एक ही शब्द स्वयं सम्पूर्ण वाक्य कैसे बन जाता है। चिट्ठियों में छिपे व्याकरण का परिचय तो बालक को अप्रत्यक्ष रूप से होता ही रहता है।

: 8 :

अब तक एकपदी चिट्ठियों की चर्चा चली। जैसे-जैसे बालक आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसको अधिक पदों वाली चिट्ठियाँ देते रहना है। ये चिट्ठियाँ व्याकरण की दृष्टि से भाषा-विकास का अनुसरण करके नहीं देनी हैं, बल्कि भाषा को समझने में बढ़ रही बालक की समझदारी और रुचि को ध्यान में रखकर देनी हैं। इसमें व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धि तो होनी ही नहीं चाहिए।

यहाँ एक बात का उल्लेख आवश्यक है। यह लेखन बाल-मन्दिर में किए गए चिट्ठी-सम्बन्धी प्रयोगों पर आधारित है। भाषा के विकास से जुड़ी बालकों की भूख को ध्यान में रख कर जो चिट्ठियाँ उनको दी गईं, और जिन चिट्ठियों को उन्होंने बिना लौटाए पढ़ा, जिन पर उन्होंने अमल किया, और जिनसे उन्होंने सच्चे आनन्द का अनुभव किया, उस सबको ध्यान में रखकर ही यहाँ ये विचार रखे गए हैं। मतलब यह है कि जिसको अपनी आँखों देखा है, और जिसका स्वयं अनुभव किया है, उसी का यह सार है। यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह सब हो सका है, और हो सकने लायक है।

एक पदी चिट्ठियों के बाद दो पदों वाली चिट्ठियाँ शुरू

होती हैं। जैसे, धीमे चलो, मुँह धोओ, धीमे बोलो, बाल सँवारो, दातौन लाओ, सूरज बहन को बुलाओ, खिड़की खोलो, उठ-बैठ करो, गुलाँट खाओ, उछलो-कूदो, रेंट पोंछो, त्रिकोण बनाओ, नमस्कार करो, घरौंदा बनाओ, आईने में देखो, ताली बजाओ, आदि। व्याकरण की दृष्टि से ये चिट्ठियाँ अपने स्वाभाविक क्रम में हैं।

इन चिट्ठियों से पता चल सकेगा कि इनमें से एक प्रकार की चिट्ठियाँ बालक को हाथ धोने, मुँह धोने, आईने में देखने, बाल सँवारने आदि काम करने को कहकर उसके अपने शरीर के साफ-सुथरेपन की तरफ देखने का इशारा करती हैं, और उसको इनका शौक़ लगाती हैं। दूसरे प्रकार की चिट्ठियाँ उसको उछलने-कूदने, घरौंदे बनाने और गुलाँट खाने की बात कहकर खेलने का आनन्द देती हैं। कुछ चिट्ठियाँ उसको छोटी-छोटी आज्ञाओं का पालन करने का आनन्द देती हैं, और कुछ चिट्ठियाँ बालक से त्रिकोण, चतुष्कोण आदि मँगवाकर उसके ज्ञान का माप लेती हैं। इनके अलावा, दूसरी कुछ चिट्ठियाँ नमस्कार करने, धीमे चलने, और धीमे बोलने की आज्ञाएँ देकर बालक को सामाजिक शिष्टाचार की और संस्कारिता की दीक्षा देती हैं। वे बिना किसी उपदेश या दबाव के बालक को विनय और विवेक का पाठ पढ़ाती हैं। उसको आचरण का ढंग सिखाती हैं। चूंकि बालक को ये सारी बातें अच्छी लगती हैं, इसलिए उसके मन पर इनकी गहरी छाप पड़ती है।

बालक 'नमस्कार करो', वाली चिट्ठी पढ़ता है। वह अपने किन्हीं गुरुजन के पास कुछ मुस्कराता और कुछ शरमाता हुआ पहुँचता है, और सहज भाव से उनको नमस्कार करके वापस जाता है, और जाते समय अपने गुरुजन की प्रेमपूरित दृष्टि

अपने साथ ले जाता है। चिट्ठी के द्वारा बालक को ऐसे मनोरंजक और आत्मा को तृप्ति देने वाले अनुभव करने के अवसर मिलते हैं।

चूमो, पानी दो, ताली बजाओ, गोद में बैठो, आदि चिट्ठियाँ बहुत प्यारी लगती हैं। हर किसी को नमस्कार करने और पानी पिलाने वाली चिट्ठियाँ तो बहुत बालप्रिय और बालप्रसिद्ध सिद्ध हुई हैं। बालक लोटा और गिलास लेकर और पानी पिलाकर एक बड़े महाभारत काम को कर लेने के आनन्द का अनुभव करता है। वह हँसता-हँसता आता है, और पानी का गिलास आपके हाथ में देता है, तो पानी पीने की इच्छा न होते हुए भी आपके मन में वह पानी पीने की इच्छा जगा देता है, और आपको पानी पिला कर आपका मन चुरा लेता है।

:9:

बालकों को विशेष रूप से प्रिय लगने वाली ऐसी चिट्ठियों की एक सूची दी जा सकती है। जैसे, पचास बार कूदो; पूरे बाल मन्दिर की खिड़कियाँ और दरवाजे गिनो; अपने गाल पर तमाचा मारो; गुलाँटें खाओ; रेत में खेलो; ध्यान धरो; प्रार्थना करो, आदि।

दो पदों वाली चिट्ठियों की खाड़ी को लाँघकर चिट्ठी पढ़ने का काम समन्दर के बीचोबीच पहुँच जाता है। छोटे-छोटे शब्दों की चिट्ठियों से लेकर बड़े-बड़े वाक्यों वाली चिट्ठियों के अन्त में खेल की चिट्ठियाँ और कथा-कहानी की चिट्ठियाँ बालक को नए-नए समुद्र-जल से नहलाती हैं।

ऊपर अलग-अलग प्रकार की जिन चिट्ठियों की बात कही गई है, यहाँ उनके कुछ नमूने देना ज़रूरी लग रहा है।

चिट्ठियाँ :

तीन शब्दों की : 1. पीपल को छूकर आओ; 2. पटिया धोकर लाओ; 3. संगीत के कमरे में जाओ।

चार शब्दों की : 1. सातों वारों के नाम लिखो; 2. कुरसी पर खड़े होओ। 3. दो तितलियाँ पकड़कर लाओ।

पाँच शब्दों की : 1. आँख मूँद कर गणित की चिट्ठियाँ जमाओ; 2. हरी पेन्सिल विद्याबहन के हाथ में दो।

छह शब्दों की : 1. इन पत्तों से पूरे बाल मन्दिर को सजाओ; 2. जाकर सूरज बहन को चिट्ठी पढ़ने में मदद करो; 3. अपनी सब बहनों के नाम लिख कर दोगे ?

सात शब्दों की : 1. पुस्तक के सात पन्ने पढ़कर लाने की कृपा करो; 2. एक बढ़िया गीत की दो पंक्तियाँ लिखकर लाओ; 3. अगरबत्ती जलाओ और उसकी सुगन्ध मनुभाई को सुँघाओ; 4. कुछ कौड़ियाँ लो और उनसे एक फूल बनाओ।

आठ शब्दों की : 1. नर्मदा बहन से पूछो कि वे हमारे कमरे में कब आएँगी ?; 2. बिना आवाज किए दौड़ कर मनुभाई की कक्षा तक जाओ; 3. आज जितने चित्र बनाए हों, उतने मुझको दिखाओ।

नौ शब्दों की : 1. गिजुभाई से कहो कि वे एक वीर पुरुष की तरह लड़ने आएँ; 2. तुम और कुलीनचन्द्र आमने-सामने बैठकर 'मोटी बहन' के दो पाठ पढ़ो; 3. चिनुभाई इस समय कहाँ हैं और उनकी

तबीयत कैसी है ? 4. अब थक चुके होंगे, इसलिए गाते-गाते चित्र बनाओ ।

दस शब्दों की : 1. एक कटोरी लेकर लकड़ी घिसकर नीला और पीला रंग बनाओ; 2. आज भोजन में खाई हुई सब चीज़ों के नाम सुन्दर अक्षरों में लिखो; 3. बाहर जाकर खूब दौड़ो और फिर आराम करके वापस आओ ।

ग्यारह शब्दों की : 1. मनुभाई के कमरे में जाकर उनकी अनुमति लेकर एक लाल तख़्ती ले आओ; 2. तुमको जितने गाँवों के नाम याद हों, उतने सब गाँवों के नाम लिखकर लाओ ।

बारह शब्दों की : 1. अपने-गाल दिखाओ; फिर कान पकड़ कर अपने गाल पर दो तमाचे मारो; 2. तख्तेश्वर जाकर दो सौ कंकर रख आओ; लौटते समय दो सौ कंकर बीन कर लाओ ।

तेरह शब्दों की : 1. आज अपने बाल मन्दिर में जितने बालक आए हों, उतनों के नाम शब्द लिखने की परची पर लिखो; 2. आज भोजन के समय सजावट करनी है, इसलिए तुम जितने चाहो उतने पत्ते ले आओ ।

चौदह शब्दों की 1. मनुभाई के कमरे में जाकर गिनो कि वहाँ कितने लड़के हैं, और हर एक को दो-दो कौड़ियाँ दे आओ; 2. रामभाई को पीठ पर बैठाकर कितने क़दम चल सकते हो, सो गिनकर मुझको बता जाओ; 3. देखने के लिए

घोड़ी पर जो चित्र रखे हैं उनमें से तुमको सबसे अच्छा लगने वाला चित्र लाओ ।

आगे चलकर सोलह या सोलह से अधिक शब्दों वाले वाक्य भी आते हैं । नमूने का एक वाक्य पर्याप्त होगा : 'बाल मन्दिर की परिक्रमा करो । सामने के किसी भी दरवाजे से बाहर जाकर सीढ़ियों के रास्ते नीचे पहुँचकर, बुनाई वाले कक्ष की बगल से जाओ । वहाँ से पीछे वाले दरवाजे के पास से निकलकर भोजन वाले कक्ष के पास आओ और वहाँ से ऊपर आ जाओ । इस को परिक्रमा कहा जाता है ।'

: 10 :

ये सारी चिट्ठियाँ एक प्रकार की हुई । ये चिट्ठियाँ आज्ञार्थक हैं । बालक को भाषा के केवल आज्ञार्थक स्वरूप का ही परिचय हम न कराएँ । वह भाषा के विशाल और विविध प्रदेशों तक पहुँच सकें, इसके लिए उसके सामने दूसरे प्रकार की चिट्ठियाँ भी पहुँचनी चाहिए । इन दूसरे प्रकार की चिट्ठियों को मैं खेल-चिट्ठी कहूँगा । इस में दस-पन्द्रह चिट्ठियों को मिलाकर एक बड़ी चिट्ठी बनती है । मतलब यह कि दस-पन्द्रह चिट्ठियों को पढ़ने के बाद ही बालक एक खेल खेल सकता है । ये चिट्ठियाँ देशी खेलों की चिट्ठियाँ नहीं होती । सिर्फ इनका नाम ही खेल की चिट्ठियाँ हैं । वैसे इसमें क्रियाओं का और मन-बहलाने वाली बातों का समावेश होता है । मैं नीचे ऐसी एक खेल-चिट्ठी दे रहा हूँ ।

कहानी सुनने का खेल

यह पाँचवाँ खेल है । इसका नाम वही है, जो ऊपर दिया है । इसके अन्दर वाले वाक्य नीचे लिखे अनुसार हैं :—

1. कहानी सुननी हो, तो यह खेल खेला जाए । 2. जिनसे

कहानी सुननी हो, उनके नाम चिट्ठी लिखी जाए कि क्या आप हमको कहानी सुनाएंगे ? 3. चिट्ठी लेकर कहानी सुनाने वाले के पास जाना और उनको नमस्कार करना; 4. बाद में उनके हाथ में चिट्ठी देकर चुपचाप खड़े रहना; 5. यदि कहानी कहने वाले 'हाँ' कहें, तो संगीत के पदों पर पहुँचना; 6. कहानी कहने वाले के लिए आसन बिछाना; 7. कहानी शुरू करने के लिए कहना और लम्बी कहानी कहलवाना; 8. कहानी पूरी होने पर कहने वाले को नमस्कार करना; 9. आसन को उसकी जगह पर रखना; 10. खेल समाप्त।

इस चिट्ठी को पढ़कर बालकों ने इसमें से दूसरे नम्बर की चिट्ठी के अनुसार जो चिट्ठी लिखी थी, उसकी नक़ल नीचे दे रहा हूँ।

वन्दे मातरम्

प्रिय रामभाई,

सविनय निवेदन है कि क्या आप हमको कहानी सुनाएँगे ?

ह.– 'रा. ह. वं. के प्रणाम'

खेल की यह चिट्ठी बालक को क्यों अच्छी लगती है, और इससे उसकी शक्ति कैसे विकसित होती है, इसके बारे में अधिक कहना आवश्यक नहीं है।

:11:

चिट्ठी-वाचन का अपना एक और प्रकार भी है। यह प्रकार कहानी-चिट्ठी का है पहले हम एक-दो कहानी-चिट्ठियाँ पढ़ें।

1. एक लड़का था। एक लड़की थी। लड़का 'चणीबोर'[1] लाया। लड़की 'चालनगाड़ी' लाई। दोनों जने पढ़ने बैठे। कुछ

1. गुजराती की दो बालोपयोगी पुस्तकों के नाम

देर तक पढ़ने के बाद वे नर्मदा बहन के पास गए।

2. एक लड़की थी। वह संगीत के कमरे से बाहर गई। बाहर जाकर उसने सूरज को नमस्कार किया। फिर उसकी इच्छा चित्र बनाने की हुई। वह अपने कमरे में से मेज और चित्र बनाने के साधन ले आई। बाद में उसने आसन बिछाया। फिर हाथ धोए और फिर अपनी नोट बुक में एक सुन्दर चित्र बनाया। फिर गिजुभाई को अपना चित्र दिखाकर वह हँसती हुई मेज के पास गई और वहाँ आराम से बैठी।

अब तक की चिट्ठियों में क्रिया की परम्परा के कारण खड़ी होने वाली घटना (कहानी) नहीं होती थी। खेल वाली चिट्ठियाँ इस प्रकार की चिट्ठियों से भिन्न ही होती हैं। यह चिट्ठी बालक को विधिवत् साहित्य-वाचन के सीधे मार्ग पर ले जाती है। एक पूरी घटना की चर्चा करने के लिए वाक्यों के समूह का उपयोग किस प्रकार किया जाता है, बालक को इससे इस बात की जानकारी मिलती है। यहाँ से वाचन-सम्बन्धी क्षेत्र के सारे भेद बालक के सामने आ जाते हैं। यदि यह कहा जाए कि यहाँ से बालक ने पोथी अथवा पुस्तक पढ़नी शुरू कर दी है तो वह उचित ही होगा।

कहानी वाली चिट्ठी का हर एक वाक्य अलग-अलग परचियों पर लिखा रहता है। इन परचियों की एक गड्डी बनाकर उसके एक छोर को छेदा जाता है और इनको धागे से बाँध दिया जाता है। इसको एक तरह की छोटी पुस्तक भी कहा जा सकता है। बालक गड्डी उठाता है। पहला वाक्य पढ़ता है : 'एक लड़की थी।' इसमें कोई आज्ञा नहीं है। कुछ कहना भी नहीं है। कुछ सोचना है, भाव-जगत् में जाना है। पढ़ने वाले को इस समय यह कल्पना करनी है कि कहानी वाली लड़की वह स्वयं ही है। पढ़ने वाला वैसी कल्पना करता है और चिट्ठी वाली लड़की बनता है। फिर

दूसरा वाक्य पढ़ता है : 'वह संगीत के कमरे से बाहर गई।' पढ़ने वाली लड़की संगीत के कमरे से बाहर जाती है। बाद में तीसरा वाक्य पढ़कर वह सूर्य को नमस्कार करती है। इसके बाद विचार की प्रेरणा देने वाली चिट्ठी आती है। कहानी वाली 'लड़की को चित्र बनाने की इच्छा होती है।' पढ़ने वाली लड़की इस विचार को अपना लेती है। फिर वह चित्र बनाती है। चित्र गिजुभाई को दिखाती है और आखिर में आराम से बैठती है। ऐसे चिट्ठी-वाचन से होने वाली मानसिक-क्रिया अलग ही प्रकार की होती है। यहां केवल स्थूल क्रिया ही नहीं करनी है; यहां तो भाव-जगत में प्रवेश करना है, और आराम आदि से भाव व्यक्त करने हैं।

जिसने ऐसी चिट्ठी पढ़ने वाले बालक को देखा है, उसने इस चिट्ठी के महत्त्व को पहचाना है। बालक के चेहरे पर सूचक शान्ति है, क्रिया करने की प्रसन्नता है, वह मन की अधिक गहरी गहराई में उतरा है। इससे उनके आसपास की परिस्थिति अबाधित रही है। यहाँ वह दृश्य भी देखने को मिलता है कि शान्ति के इस वातावरण में विकास का काम किस प्रकार होता रहता है।

वहाँ आकर बालक की नट-वृत्ति को पोषण मिलता है। उसकी कल्पना-शक्ति तीव्र बनती है, और उसको वास्तविकता वाले स्वस्थ साहित्य का अनुभव होता है। यह पता चला है कि चिट्ठी-वाचन के क्रम में कहानी वाली चिट्ठियाँ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

ऊपर दी गई चिट्ठियाँ तो नमूने के रूप में ही हैं। बाल मन्दिर में तरह-तरह की चिट्ठियों का बड़ा-सा ढेर पड़ा है। इस सब चिट्ठियों से इस बात का पता चल सकेगा कि इनको पढ़ने वाले बालकों को क्या प्रिय है, क्या अप्रिय है, उनके अनुभव का क्षेत्र कितना विस्तृत बना है, वे किस तरह की दुनिया में रुचि लेते हैं, और

समझने की उनकी शक्ति कितनी है। इन सब चिट्ठियों की मदद से प्रत्येक बालक की मानसिक स्थिति के विषय में बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। किन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ उसकी चर्चा छोड़ रहे हैं।

इस प्रकार चिट्ठियां पढ़ते-पढ़ते बालक पुस्तक-वाचन के क्षेत्र में पहुँचता है। वहाँ वह पुस्तक का उपयोग किस प्रकार करता है, आदि पुस्तकालय के उपयोग से जुड़ी बातों की चर्चा मैं यहाँ छोड़ रहा हूँ।

: 12 :

किसी भी शक्ति का विकास बार-बार की क्रिया से विकसित होता है और रूढ़ बनता है। पढ़ना सीखने की क्रिया में भी यह सिद्धान्त लागू होता है। इसीलिए तो पाठशालाओं के पाठ बार-बार पढ़वाए जाते हैं। लेकिन उसमें जो दोष रह जाता है, यहां उसकी चर्चा न करके हम यह देखें कि चिट्ठी-वाचन में पुनरावर्त्तन का काम कैसे चलता है?

ऐसा नहीं होता कि बालक एक चिट्ठी को एक बार पढ़कर, और तदनुसार क्रिया करके उनको हमेशा के लिए एक तरफ रख देता हो। चिट्ठी पढ़ने की शक्ति का विकास करता है इसलिए जब तक बालक उससे मिलने वाली शक्ति को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक बालक के लिए वह पढ़ने लायक ही बनी रहती है। चिट्ठियाँ क्रमिक होती हैं, किन्तु बालक एक ही श्रेणी पर लम्बे समय तक रुका रहता है। उस श्रेणी में रह कर और वहाँ बार-बार पुनरावर्त्तन करके अगली श्रेणी में जाने की शक्ति प्राप्त करने के बाद ही वह आगे बढ़ सकता है। इसी कारण बालक दो पदों वाली चिट्ठियां रोज़-रोज़ लेता है, वह सबको पढ़ता है, उनके अनुसार क्रियाएँ

करता है, और उनको उनकी जगह पर रख देता है। दूसरे दिन वह फिर इसी काम को शुरू करता है। यों करते-करते जब 'खड़े होओ' वाली चिट्ठी उसके लिए सहज बन जाती है, तभी वह आगे वाली चिट्ठियों की गड्डी उठाता है। यह क्रिया स्वाभाविक है। बालक से एक-के-बाद एक चढ़ते क्रम वाली चिट्ठियाँ जल्दी-जल्दी पढ़वा कर उसको आगे नहीं बढ़ाया जाता। जबकि आज की शिक्षा-पद्धति में तो ऐसा ही किया जाता है, क्यों कि उसमें हर रोज़ एक नया पाठ पढ़ाया जाता है। लेकिन अकसर जब बालक को काफी समय तक स्वतन्त्रता, अन्तर की भूख अथवा मांग के कारण बार-बार क्रिया करने की अनुकूलता प्राप्त होती है, तभी वह निश्चित कर सकता है कि अब उसको अगला क़दम कब उठाना है। निःसन्देह, बालक के अपने सामने अगला क़दम तो रहना ही चाहिए, नहीं तो बालक सड़ने लगता है। अकसर यह देखा जाता है कि बालक एक-ही-एक श्रेणी की चिट्ठियाँ बहुत लम्बे समय तक पढ़ता रहता है। फिर कुछ बालक चिट्ठियाँ पढ़कर उनके पीछे अपने नाम लिख देते हैं, इससे भी इस बात का पता चल सकता है।

बालकों में पाए जाने वाले रुचि-भेद के कारण भी कई बालक एक ही प्रकार की चिट्ठियों को बार-बार पढ़ते रहते हैं, जबकि उसी श्रेणी की दूसरी चिट्ठियों को वे हाथ तक नहीं लगाते। वे बार-बार एक ही प्रकार का अनुभव प्राप्त करके अचानक छलाँग मारकर हनुमान की तरह एक ही उड़ान में बीच की सारी श्रेणियों को लाँघ कर वाचन के विशाल प्रदेश पर चलना शुरू कर देते हैं। दूसरे कुछ बालक क्रम-क्रम से आगे बढ़ते हैं। फिर भी वे चल रही श्रेणी के समूचे प्रदेश में घूम लेने के बाद ही आगे बढ़ते हैं। कई उतावले स्वभाव वाले बालक लम्बी दूरी तक कूद कर अपने

पैर तोड़ लेते हैं, वे पिछड़ जाते हैं, और उनको अधिक समय और अधिक शक्ति खर्च करनी पढ़ती है। इन सब भिन्नताओं के मूल में कौन-कौन से तत्त्व काम कर सकते हैं, इसकी जाँच-पड़ताल के लिए हमारे पास समय नहीं है।

: 13 :

अब हम चिट्ठियों के अलग-अलग विषयों पर एक नज़र डालें। अब तक की इन चिट्ठियों में से नीचे लिखे क्षेत्र हाथ में आए हैं।

1. भाषा :— वाचन, लेखन, शब्दार्थ, व्याकरण, पहेली, कहानी।
2. गणित :—शुद्ध गणित और मनोविनोद, व्यवहारोपयोगी गणित।
3. कला :— चित्र, संगीत, कविता-गान, नृत्य, नाटक, शृंगार।
4. धर्म :— प्रार्थना।
5. शिष्टाचार :— नमस्कार आदि।
6. कसरत :— लड़ाई, कूदना।
7. व्यवहार :— घरेलू खेल, भोजन।
8. इन्द्रिय शिक्षण :— प्रबोधक सामग्री।
9. खेल :— मन बहलाव।
10. सृष्टि-परिचय :— प्रकृति, पशु, प्राणी, वनस्पति।
11. बुद्धि की कसरतें।

यहाँ ऊपर लिखे गए सब क्षेत्रों से जुड़ी एक- एक, दो-दो चिट्ठियों के नमूने देने से उनकी ठीक जानकारी हो सकेगी।

भाषा

वाचन : 'मोटी बहन' पुस्तक के कोई भी दो पाठ पढ़ो।

लेखन : हरिभाई को एक पहेली सुनाओ और उन्होंने उसको कैसे बूझा, सो कहानी वाली परचियों पर तरह-तरह की पेन्सिल से लिख कर लाओ।

शब्दार्थ : कुसुम यानी क्या! पर्वत यानी क्या! चन्द्र यानी क्या? नीचे लिखे शब्दों के अर्थ लिखो : ताक, गाड़े, सुन्दर, अत्यन्त, अपार, मिलन, स्वच्छ, शान्त।

व्याकरण : नीचे लिखे शब्दों के स्त्री लिंग रूप-लिखो :— पिता, मोची, कुम्हार, मामा, भाई, कोली, दरजी।

पहेली : बत्तीस दांतों में एक लूली बाई।

कहानी :- अपने हाथ धो लो और फिर कहानी कहो।

भाषा के क्षेत्र की अलग-अलग प्रकारों वाली इन चिट्ठियों से पता चल सकेगा कि बालक के ज्ञान के कितने सारे क्षेत्र खुल जाते हैं। इन चिट्ठियों से यह देखा जा सकता है कि शब्दों के अर्थ तक पहुँचने में चिट्ठी-वाचन किस प्रकार काम करता है, व्याकरण में सादी बातें कैसे कही जाती हैं, पहेली के समान बुद्धि को घिसकर चमकाने वाले साधनों का उपयोग कैसे किया जाए, और मौखिक निबन्ध (कहानी) का स्वरूप कैसा हो।

गणित

शुद्ध गणित :—पचास कंकर लाओ और बताओ कि दस-दस की कितनी कतारें बनीं। जोड़ की चार परचियाँ लिख कर लाओ।

गणित-क्रीड़ा :—बीस बार उछलो-कूदो; बीस बार कान पकड़ो; बीस बार हाथ ऊँचे करो, बीस बार नाक पकड़ो; बीस बार ताली बजाओ।

व्यावहारिक गणित :—एक आदमी के पास दो थैलियाँ थीं;

एक में सात रुपए थे, दूसरी में पांच थे। सब मिल कर कितने रुपए हुए?

कला

चित्र :—खिलते हुए गुलाब का बढ़िया चित्र बनाओ। उसमें लाल पेन्सिल से रंग भरो और गिजुभाई को दिखाओ।

संगीत :—'चणीबोर' पुस्तक में से पांच गीत अच्छे राग में गाओ।

सजावट :–सजावट के लिए पेड़ों की थोड़ी पत्तियाँ ले आओ।

नाच :–संगीत के कमरे में जाओ और खूब नाचो।

नाटक :–लिखो कि नाटक में तुम कौन से पात्र का काम करना चाहोगे?

इन चिट्ठियों की मदद से यह जाना जा सकता है कि कला के अलग-अलग पहलुओं को कैसे छुआ जाए, और इनकी मदद से बालक को कैसे पहचाना जाए।

धर्म

(1) एक आसन पर अत्यन्त स्वस्थ भाव से चुपचाप बैठो, और कुछ देर तक भगवान का नाम जपो।

(2) प्रार्थना करो।

शायद कुछ लोग कहेंगे कि ऐसी चिट्ठी से तो प्रार्थना का और प्रभु-भजन का उपहास ही होगा। कुछ लोग कहेंगे कि यह तो बढ़िया काम है। ऐसी ही चिट्ठियाँ अधिक दी जानी चाहिए। इस विषय में कुछ लिखने की अपेक्षा मैं यहां यह जानकारी दे रहा हूँ कि असल में इन चिट्ठियों को पढ़ते समय होता क्या है।

बालक 'ध्यान करो' चिट्ठी पढ़ता है। बाल मंदिर में बार-बार ध्यान का कार्यक्रम चलता है, इसलिए बालक जानता है कि ध्यान

कैसे दिया जाता है। बालक स्वस्थ भाव से बैठ जाता है। सिर, हाथ, पैर आदि को स्थिर करता है। बाद में आँखें भी बन्द कर लेता है। आसपास कुछ भी हलचल क्यों न हो रही हो, फिर भी बालक एकाग्रता और गम्भीरता के साथ बैठा रहता है। अक्सर कोई गड़बड़ होती है, तो उसको दूर करके वह फिर ध्यान की मुद्रा में बैठ जाता है। यह एक बात हुई।

'प्रार्थना करो' की चिट्ठी आई। बालक प्रार्थना जानता है। वह प्रार्थना करने की रीति भी जानता है। लेकिन चिट्ठी के अनुसार वह प्रार्थना करता है। उसमें वह अपनी भावना जोड़ता है। वह किसी देश भक्त के या पौराणिक देव के चित्र के पास जाता है, उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहता है। मन को स्थिर करता दिखाई पड़ता है। मन में देव के सामने खड़े होने का भाव लाता है। फिर मानो कोई बड़ा भक्त प्रार्थना कर रहा हो, वैसे प्रेम और उमंग के साथ प्रार्थना करता है। वह एक प्रकार की शान्त और मधुर समाधि का अनुभव करता है। गड़बड़ करता है तो उनको अच्छा नहीं लगता है।

बालकों को प्रार्थना करना क्यों अच्छा लगता है, इसका उत्तर एक ढंग से दिया जा सकता है। बालकों को गणित का विषय अच्छा लगता है, क्योंकि उनकी बुद्धि विकास चाहती है। बालकों को चित्र अच्छे लगते हैं, क्योंकि उनसे उसकी चित्र-वृत्ति आगे बढ़ती है। बालक तरह-तरह के काम करता है, क्योंकि उसकी क्रिया-गणित बलवान होना चाहती है। बालक प्रार्थना करना चाहता है, क्योंकि उनकी क्रिया-शक्ति बलवान होना चाहती है। बालक प्रार्थना करता है, क्योंकि उसकी एक प्रकार की भावना विकसित होना चाहती है। इसको हम धार्मिक भावना के नाम से पहचानते हैं।

बालक पढ़ता है : 'मन्दिर बनाओ।' बालक एक सुन्दर मन्दिर की रचना करता है। मन्दिर के अन्दर किसी देव को बिठाने की कल्पना करता है अथवा गांधीजी का, गुरुदेव का या तिलक का चित्र रखता है, या गाय का एक खिलौना रख देता है। अगरबत्ती जलाता है। फूल चढ़ाता है। रोज उपयोग में आने वाले चिथड़े को नैवेद्य के रूप में सामने रखता है। फिर खुद वहाँ बैठ कर प्रार्थना करता है। दूसरों को बुलाकर प्रार्थना में बिठाता है।

इस रीति से बालक कलात्मक सजावट का आनन्द लेता है, और धार्मिक विषय में अर्थात् ईश्वर-सम्बन्धी बातों में रमकर अपने मन की वृत्ति को तृप्त करता है।

यहाँ बालक उपदेश के बिना अथवा धर्म और रीति-सम्बन्धी पुस्तकों के बिना ही सीधे-सीधे महान् तत्त्वों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है। वह जानता भी नहीं कि जिसको धर्म कहा जाता है, वह यहाँ उसी का आचरण कर रहा है। इसी तरह उसको क्या पता होता है कि चिट्ठी पढ़ते समय या चिट्ठी लिखते समय या चित्र बिनाते समय वह बौद्धिक और कला-सम्बन्धी सृजन कर रहा होता है?

शिष्टाचार

बाल मन्दिर में बड़ी उमर के जितने लोग हैं, उन सबको नमस्कार करके आओ।

कसरत

घोड़ी पर अच्छी कसरत करके आओ। लड़ते समय लाठी घुमाने की नई पद्धति खोजो।

विनोद प्रिया की टेकरी पर जाकर वहाँ सौ बार कूदो।

व्यवहार

अपने मित्र का, अपने पिताजी का, अपनी माताजी का नाम लिखो, और उनके भाइयों के नाम लिखो।

तीन साथी नीचे के तलघर में जाकर पच्चीस प्याले परोस कर और सजावट करके जल्दी आ जाओ।

इन्द्रिय-शिक्षण

मनुभाई के कमरे में जाकर और आँख पर पट्टी बाँधकर तीन गट्टा-पेटियों के साथ खेलो।

खेल

अन्धी पट्टी वाला खेल खेलो।

गोविन्द भाई की टोपी पहनो।

दारा बहन का चश्मा पहनो और रौब के साथ गिजुभाई के पैर छुओ।

सृष्टि-परिचय

लिखकर लाओ कि गाय के कितने स्तन होते हैं और उनमें से क्या निकलता है।

आज शीशी में नई तितली निकली है। उसको ले आओ और मुझको दिखाओ।

एक पक्षी ऐसा है कि जो पढ़ना जानता है। उसकी चोंच का का रंग लाल है। उसको सब कारभारी कहते हैं। बताओ कि यह कौन-सा पक्षी है!

गोविन्द भाई से एक रूलदार कागज़ ले आओ और उस पर फूलों के नाम लिखो।

बुद्धि की कसरत

कौ, चि, मो, ड़ि, र या आ, इन अक्षरों में से तीन पक्षियों के नाम खोजो और फिर उनको अपनी परची में लिख लाओ।

नीचे लिखे शब्दों में बीच का अक्षर लिखकर आओ :—

हि(र) न। कु (सु) म। मू (ल) जी। सु (शी) ला।
सू (र) ज। ब (गु) ला। आ (वा) ज।

इन अलग-अलग क्षेत्रों के विषय में विवेचन आवश्यक नहीं है। पाठक इनके मर्म और इनकी उपयोगिता को स्वयं सहज ही समझ सकेंगे। चिट्ठियों के द्वारा ऐसे अनेक क्षेत्र खोजे जा सकते हैं, क्योंकि बालकों की दुनिया भी हमारी दुनिया के समान ही विशाल है।

: 14 :

अब हम चिट्ठी-वाचन के दूसरे पहलू पर विचार करें। यह पहलू है शिक्षक का।

जिस तरह आकारों और रंगों का परिचय होने पर बालक सीधे ही रेखाएँ या लकीरें खींचना शुरू कर देते हैं, जिस तरह इन्द्रियों का परिपूर्ण विकास होने पर बालक अक्षर सीखने लग जाते हैं, उसी तरह अक्षरों और चल मूलाक्षरों में से गुजरे हुए बालक एकदम चिट्ठी-वाचन के क्षेत्र में प्रवेश कर लेते हैं। जब बालक भूखे भेड़ियों की तरह चिट्ठियाँ पढ़ना शुरू कर देते हैं, तो उस समय का उनका वह दृश्य देखने लायक बन जाता है। जिस तरह बसन्त ऋतु के आने पर पेड़ में कोपलें फूटने लगती हैं, जिस तरह बारिश के बाद के दिनों में चारों तरफ तितलियाँ उड़ने लगती हैं, उसी तरह बालक भी चारों तरफ चिट्ठी-वाचन की धुन में रमे दीखते हैं। कोई बालक पाँच कोनों वाली मेज लेकर और उस पर

बैठकर पढ़ना दीखेगा, कोई खिड़की-दरवाजे बन्द करता, कोई कूदता, कोई नाचता, कोई पानी लाता, कोई एक पैर उठाकर चलता, कोई लोटता, कोई बटन खोलता, कोई गट्टों से खेलता, कोई लिखता, कोई चित्र बनाता, तो कोई गाता पाया जाएगा। बालक सिर से पैर तक चिट्ठी-वाचन की मस्ती में डूबा दिखाई पड़ेगा। शिक्षक को चाहिए कि वह बालक की इन गतिविधियों वाली ऋतु को पहचाने, सावधानी के साथ इसका पोषण करे, उसको भली भाँति समझकर उसका सही-सही उपयोग कर ले। यदि शिक्षक ऐसी ऋतु के विषय में असावधान रहेगा, तो बालक का अपना विकास रुक जाएगा। काम-काज के अभाव में बालक ऊबने लगेगा। वह दूसरों के काम में खलल पहुंचाता और ऊधम मचाता नज़र आएगा, और हमको परेशान करेगा। इस स्थिति का सत्य यह है कि जब-जब भी बालक की गतिविधियों की, प्रवृत्तियों की ऋतु आए, तब-तब उसको पहचान लेना चाहिए।

शिक्षक को चाहिए कि वह बालक के वाचन की श्रेणी को, उसके स्तर को ध्यान में रखकर उसी क्रम में उसको चिट्ठियों दे। संग्रह और गुण दोनों को ध्यान में रखकर वह चिट्ठियों की व्यवस्था करे।

दूसरे, शिक्षक को यह बात भी ध्यान में रखनी है कि प्रायः अमुक एक प्रकार की ही चिट्ठियाँ पढ़ने की ऋतु आती है। कभी बालक तितलियों की चिट्ठियाँ मांगता है, कभी महीन रेत में घर बनाने की चिट्ठियाँ चाहता है, कभी उछलने-कूदने की ही चिट्ठी माँगता है और कभी-कभी इतिहास की कहानी की नक़ल करने की चिट्ठी चाहता है। कभी वह उन कामों की चिट्ठियाँ माँगता है, जिनको वह करना चाहता है। ऐसी स्थिति में अकसर काम प्रधान होता है और चिट्ठी गौण होती है। उदाहरण के लिए, बालकों को रेत में

खेलना है। अगर चिट्ठी के ज़रिए खेलने का मौक़ा मिलता है, तो वे वैसी चिट्ठी लिखवा लेते हैं। चिट्ठियों का यह अन्तिम प्रकार अच्छा नहीं होता। अगर बालक खेलना चाहते हैं, तो उनको खेलने की अनुमति दे देने से वे चिट्ठी की शरण नहीं लेंगे, और चिट्ठी-वाचन का दुरुपयोग नहीं करेंगे। चिट्ठी-वाचन में काम-काज की, प्रवृत्ति की बात भले आए, किन्तु अमुक मना की गई प्रवृत्ति करने के लिए बालक चिट्ठी की शरण में जाते दीखें, तो उनको वैसी चिट्ठी देनी नहीं चाहिए। लेकिन जहाँ अमुक गतिविधियों के लिए स्वस्थ ऋतु आई हो, और उनके मूल में दूसरा-तीसरा कोई हेतु न हो, तो उस स्थिति में वैसी प्रवृत्ति के लिए चिट्ठियाँ खुशी-खुशी दी जा सकती हैं।

चिट्ठियों की वस्तु हमेशा ही बालकों की दुनिया के साथ जुड़ी रहनी चाहिए। आम तौर पर ऐसी क्रियाओं वाली चिट्ठियाँ हों, जो विद्यालय की परिस्थिति में सहज ही की जा सकें। उनकी भाषा शुद्ध और साहित्यिक हो। शब्दों का उपयोग सावधानी के साथ किया गया हो।

इसके अलावा एक और सावधानी बरती जानी चाहिए। चिट्ठियाँ ज़बरदस्ती पढ़वानी नहीं हैं। बालक उनको अपनी राजी-मरजी से पढ़ें। इसलिए चिट्ठी पर किसी प्रकार का कोई मसाला चढ़ाना जरूरी नहीं है। जिसको पढ़ने की सच्ची भूख लगी हो, वही पढ़े। दूसरा कोई पढ़ेगा, तो उसको अजीर्ण होगा अथवा दूसरा कोई नुक़सान होगा। इसलिए किसी भी रूप में चिट्ठी की लिखा-वट ऐसी न हो, कि उससे उत्तेजित होकर बालक चिट्ठी पढ़े। ऐसी चिट्ठियाँ हो सकती हैं। बालक को कूच का खेल पसन्द है। हाथ में डण्डा लेकर और उसी को बन्दूक मानकर चलना बालक को अच्छा लगता है। ये स्वस्थ क्रियाएं हैं। ऐसी क्रिया के लिए

चिट्ठी देनी हो, तो 'कूच करो' लिखना काफी है । लेकिन अगर इसके बदले हम बालक को ऐसी चिट्ठी दें कि 'तुम अच्छी तरह कूच करना जानते हो, तुम्हारी कूच देखने में मजा आता है, इसलिए एक अच्छा-सा डण्डा हाथ में लो, सबको बुला लो और अपनी कूच दिखाओ ।' तो इसमें स्तुति का व्यर्थ और आवश्यकता से अधिक उत्तेजन व्यक्त होता है । चिट्ठी की वस्तु को आसपास के रंगों से रंगने की कोई आवश्यकता नहीं । इसी प्रकार साहित्य का, कला का या दूसरे विषयों का अच्छा परिचय होने के बदले जिन चिट्ठियों के कारण इनका मजाक उड़े, 'बफूनरी' हो, वैसी चिट्ठियाँ भी न दी जाएँ । नाटक की चिट्ठी में 'राजा बनकर दिखाओ'-जैसी राजा बनने की चिट्ठी तो ठीक है, लेकिन अगर उसके साथ यह लिखा जाता है कि 'सिर पर जूते रखो, पैर में टोपी पहनो और हाथ में डिब्बा लो', तो यह राजा का मजाक हो जाएगा । अगर चिट्ठी के साथ 'बफून' का यानी विदूषक का विचार जुड़ा न हो, तो ऐसी चिट्ठी चल नहीं सकती । अथवा बालक जिस प्राथमिक स्थिति में हैं, उसी स्थिति में उनको अधिक रुचि लेने वाला, अथवा उसकी गहराई में उतरने वाला बनाने वाली चिट्ठियाँ भी नहीं देनी चाहिए । उदाहरण के लिए, 'गारा तैयार करके बदन पर चुपड़ो', रंग से मुंह रंगो', 'काँच का प्याला फोड़ डालो', 'धमाके के साथ दरवाजा बन्द करो', 'कान फोड़ने वाली आवाज में चीखो, चिल्लाओ', 'किसी के कन्धे पर चढ़कर उसको गिरा दो', 'घर बनाने का खेल खेलो और गुड़िया बनाओ' । चिट्ठियों का यह प्रचार त्याज्य है।

चिट्ठियाँ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध, सुरुचिपूर्ण और स्वस्थ भी होनी चाहिए । ऊपर स्वस्थ चिट्ठियों के नमूने दिए जा चुके हैं। इसके अलावा, शिक्षक को चिट्ठियों की दृष्टि से भाषा की, बाल-स्वभाव को और बाल-मनोविज्ञान की जानकारी होनी चाहिए ।

चिट्ठियों का वाचन एक छोटी बात मालूम होती है, लेकिन उसका महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि वे बालक को अनेक रीतियों से छूती हैं । वे उसके सामने आदर्श प्रस्तुत कर सकती हैं । वे बालक को मानसिक और शारीरिक गतिविधियों में रुचि लेने वाला बनाती हैं, और उसके सामने भावनाओं के क्षेत्र खोलती हैं । इस कारण यह काम एक कुशल शिक्षक का कम है ।

साधारणतः सिद्धान्त तो यही रहना चाहिए कि तैयार की गई चिट्ठियों को बालक ख़ुद ही पसन्द करके पढ़ें। स्वयं शिक्षण वाले विद्यालय से यही होना चाहिए । जब शिक्षक चिट्ठी लिखने बैठे, तभी बालक उसको पढ़ने भी लगें, तो समझ-बूझकर ऐसी स्थिति खड़ी होने ही नहीं देनी चाहिए । बालक का सच्चा आनन्द चिट्ठी पढ़ने में है । बीच में शिक्षक को लाने की ज़रूरत भी एक प्रकार के उत्तेजक का काम करती है । इसमें परावलम्बन है । इसलिए शुरू से ही बालक को चिट्ठियों के साथ खेलना इस तरह सिखाना चाहिए कि वह शिक्षक को न खोजे स्वभाव से पराव-लम्बी बने बालक अथवा लाड़-प्यार में पले बालक शिक्षक से चिट्ठी पढ़वाना अधिक पसन्द करते हैं । शिक्षक के लिए जरूरी है कि वह इस स्थिति में से जल्दी-से-जल्दी छूट जाए । बालक शिक्षक के सच्चे प्रेम का अनुभव तो चिट्ठियों के ज़रिए ही कर सकता है, अगर शिक्षक उसको ऐसी चिट्ठियाँ दे सके, जो विकास के रास्ते ले जाने वाली हों ।

फिर भी चिट्ठी लिखने का काम तो शिक्षक को ही करना होता है । लेकिन यह काम वहां हो, जहां नई-नई चिट्ठियों के निर्माण का काम करना हो । जैसे-जैसे बालक आगे बढ़ते जाएँ वैसे-वैसे शिक्षक को यह तो देखना और समझना ही होगा कि बालक किस प्रकार चिट्ठियां पढ़ने की इच्छा व्यक्त करते हैं, और कैसी चिट्ठियाँ

पढ़ सकते हैं। प्रयोग की दृष्टि से इन और ऐसी बातों का निश्चय करने के लिए शिक्षक को चिट्ठी लिखने, चिट्ठी पर हो रहे अमल को देखने और उसके वाचन को सुनने के लिए स्वयं उपस्थित तो रहना ही होगा। इसके बावजूद, शिक्षक की दृष्टि तो वही रहेगी। जिसकी चर्चा ऊपर की चुकी है।

शिक्षक के लिए यह भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि चिट्ठी पढ़ने वालों में सच्चे कितने हैं, और ग़लती से इकट्ठा हुए कितने हैं ? कभी-कभी दो-तीन बालक साथ बैठ कर एक चिट्ठी पढ़ते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि हर एक बालक चिट्ठी तो पढ़ता है, लेकिन पढ़ने का काम इकट्ठा होता है। यहाँ वे सहजीवन का सहयोग लेना चाहते हैं। इसको रोकना ज़रूरी नहीं है। कई बालक खुद चिट्ठी पढ़ना चाहते ही नहीं हैं, लेकिन उनको दूसरों के साथ काम करने की इच्छा होती है। भले ही वे काम करें। किन्तु जो बालक सचमुच चिट्ठी पढ़ना ही चाहते हैं, पर बड़ों के साथ मिल-कर बड़ी चिट्ठी पढ़ने का दिखावा करते हैं, जबकि असल में वे नीचे की श्रेणी के लायक होते हैं, तो उनको वैसा करने से रोकना चाहिए। ऐसे मामलों में शिक्षक स्वयं ही अपने अनुभव से अपना रास्ता खोज लिया करे।

अपने विद्यालय की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर शिक्षक स्वयं निर्णय करे कि चिट्ठियां कैसे काग़ज पर या गत्ते पर तैयार की जाएँ। सब प्रकार की चिट्ठियों के अक्षर बड़े होने चाहिए। चिट्ठी ऐसी न हो कि जो बार-बार बिगड़ती रहे। हमने रेलवे के लेबलों पर चिट्ठियाँ तैयार की हैं। उन पर हम यहाँ दिए गए नमूने के ढंग पर लिखते हैं। ऊंची कक्षाओं वाली चिट्ठियों के अक्षर छोटे होते जाते हैं। चिट्ठियाँ बहुत जमा-जमाकर न लिखी जाएँ।

पानी लाओ

जिस स्वाभाविक ढंग से हम लिखते हैं, उसी ढंग से चिट्ठियाँ भी लिखी जाएँ, तो बालकों को फाइलों में लगी चिट्ठियों को पढ़ना सिखाना न पड़े।

: 15 :

जिस प्रकार चिट्ठियाँ स्वयं विकासक हैं, उसी प्रकार वे स्वयं परीक्षक हैं। बालक की शारीरिक, मानसिक, ज्ञान-विषयक और कला-विषयक योग्यता अथवा अयोग्यता की, रुचि अथवा अरुचि की कसौटी चिट्ठी पढ़ने वाला बालक खुद ही कर लेता है। चूँकि बालक को पढ़कर क्रिया करनी होती है, इसलिए जहां वह रुक जाता है, वहाँ उसकी अशक्ति की परीक्षा सहज ही हो जाती है। यदि चिट्ठी पढ़ने की व्यवस्था भली भाँति की जाए, तो वह सचमुच स्वयं-सुधारक भी बनती है। चिट्ठियाँ बालक की परीक्षा करने वाली बन जाती हैं। चिट्ठियों से पता चल जाता है कि बालक को अलग-अलग विषयों का कितना ज्ञान हुआ है, उसको रंग-रूप आदि के नाम मालूम हैं या नहीं, वह परिमाणों का और सतह का भेद समझता है या नहीं, और वह ध्वनि-संज्ञाओं आदि से परिचित है या नहीं।

कुछ चिट्ठियाँ बालक के इन्द्रिय-विकास की परीक्षा करती हैं, तो दूसरी कुछ चिट्ठियां उसके कला-विकास की, कुछ उसके ज्ञान की, कुछ शारीरिक शक्ति की और कुछ उसकी सामाजिक और धार्मिक भावना की परीक्षा अलग-अलग ढंग से करती हैं। बालक की इन बातों को जान-समझकर और बालक की स्थिति का अन्दाज लेकर शिक्षक बालक को आगे बढ़ाने के बारे में उचित व्यवस्था कर सकता है।

खुद बालक को तो पता नहीं चल पाता, फिर भी हर एक चिट्ठी के ज़रिए बालक की परीक्षा तो होती ही रहती है। दूसरी

शक्तियों की परीक्षा के साथ हो बोच-बीच में मुख-पाठ की परीक्षा भी चलती रहती है।

साधारण रूप से शुरू-शुरू की चिट्ठियाँ पढ़ाते समय, चिट्ठी के अनुसार काम करने के बाद, बालक को वह चिट्ठो शिक्षक के सामने पढ़नी होती है। इससे शिक्षक जान सकता है कि सचमुच बालक किस तरह पढ़ता है। बालक समझ कर पढ़ सकता है, फिर भी अगर उसके पढ़ने में कोई कमी रह जाती है तो वह इस मुख पाठ से दूर होती है। चिट्ठियों को बार-बार मुँह से पढ़ते रहने के कारण भी बालक में मुख-पाठ की अच्छी शक्ति और गति आ जाती है। एक बार अर्थ समझकर और उसके अनुसार काम करके फिर मुँह से पढ़ना आसान हो जाता है। चूंकि उस समय अर्थ लगाने की क्रिया पहले हो चुकती है, इसलिए मुँह से पढ़ना कठिन नहीं लगता।

इस प्रकार तरह-तरह की चिट्ठियाँ पढ़ने का आनन्द लूटते-लूटते बालक अनजाने ही पुस्तक पढ़ने लग जाएँगे। अचानक ही कोई पुस्तक लेकर वे उसको पढ़ने बैठेंगे, और उसकी बातें उनकी समझ में आने लगेंगी, तो उनको इस बात का आश्चर्य होगा कि पढ़ना सीखे बिना ही वे कैसे पढ़ने लग गए ! कोई नई चीज़ उसके हाथ में आ गई है, किसी बड़े पुस्तकालय की चाबी उनको मिल गई है, इसके आनन्द से वे आनन्दित हो उठेंगे।

प्रत्येक विद्यालय में प्रत्येक शिक्षक को यह प्रयोग अवश्य ही करके देखने लायक है। इससे बालक को आनन्द के साथ ज्ञान मिलेगा, शिक्षक का काम सरल बनेगा और शिक्षा के कार्य में एक डग आगे रखा जा सकेगा।

□